अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अक्तूबर २०२३

अग्निशिखा एवम् पुरोधा
अक्तूबर २०२३ वर्ष १, अंक ३, पूर्णांक ३

विषय-सूची

वन्दे मातरम्

(श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
भारत माता	५
जागो, हे भारत!	९
एशिया की भूमिका	२२
यूरोप और एशिया	२६
दलबन्दी के बिना सरकार	२९
आज का संसार	३०
भारत और पाकिस्तान : विभाजन को जाना होगा	३२

पुरोधा

दैनन्दिनी		३३
भारत की प्रगति हो	रवीन्द्रजी	३६
कुछ भी असम्भव नहीं है	वन्दना	३८
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : तुम परिस्थिति के स्वामी बन सकते हो	नवजातजी	४०
मुश्किलें रास्ता दिखाती हैं (कविता)	नीरज	४३
'गैर्वाणी' : पूर्वम् आत्मनि दृष्टिपातः कर्तव्यः पहले अपने अन्दर झाँको	वन्दना	४४ ४६

सारी सृष्टि में धरती का एक प्रतिष्ठित विशेष स्थान है, क्योंकि अन्य सभी ग्रहों से भिन्न, वह विकसनशील है और उसके केन्द्र में एक चैत्य सत्ता है। उसमें भी, विशेष रूप से भारत, भगवान् द्वारा चुना हुआ एक विशेष देश है। ***श्रीमाँ***

सन्देश

आपने अपने एक सन्देश में कहा है :

"भारत की पहले नम्बर की समस्या है, अपनी आत्मा को फिर से पाना और अभिव्यक्त करना।" भारत की आत्मा को कैसे पाया जाये?

अपने चैत्य पुरुष के बारे में सचेतन होओ। ऐसा करो कि तुम्हारा चैत्य पुरुष भारत की 'आत्मा' में तीव्र रुचि ले और उसके लिए सेवा-वृत्ति से अभीप्सा करे; और अगर तुम सच्चे हो तो सफल हो जाओगे।

१५ जून १९७०

भारत वह देश है जहाँ चैत्य के विधान का शासन **हो सकता है** और **होना चाहिये** और अब **यहाँ** उसका समय आ गया है। इसके अतिरिक्त, इस देश के लिए, जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य के प्रभाव और आधिपत्य के कारण विकृत हो गयी है, यही एक सम्भव निस्तार है। हर चीज़ के बावजूद, उसके पास एक अनोखी आध्यात्मिक परम्परा है।

आशीर्वाद। २ अगस्त १९७०

सम्पादकीय : जगत् के सम्मुख एक नये भारत का उदय हो रहा है। भारत का उत्थान न केवल स्वयं उसकी भलाई के लिए, बल्कि पृथिवी तथा मानवता के कुशल-क्षेम के लिए हो रहा है। लेकिन इसके लिए और साथ ही भारत को अपना उद्देश्य चरितार्थ करने के लिए उसे पहले स्वयं अपने अन्दर के रहस्य को खोज निकालना होगा। उसे अपनी प्रज्ञाशील और बलशाली आत्मा में गहरे डुबकी लगानी होगी और अपने बारहमासी उत्सों से शक्ति प्राप्त कर स्वयं को तथा जगत् को पुनरुज्जीवित करना होगा।

यह अंक भारत माँ की अन्तरात्मा को निवेदित है।

भारत की आत्मा एक और अविभाज्य है। भारत संसार में अपने 'मिशन' के बारे में सचेतन है। वह अभिव्यक्ति के बाहरी साधनों की प्रतीक्षा कर रहा है।

श्रीमातृवाणी, *खण्ड १३, पृ. ३८२*

भारत माता

आह्वान

१५ अगस्त, १९४७

हे हमारी माँ, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननि, तूने कभी, अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहाँ तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे माँ, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जाग उठे हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें वह पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सम्मुख उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें वह पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजाति को दिखा सकें।

श्रीमातृवाणी, खण्ड १३, पृ. ३८२

भवानी के रूप में माँ

माँ भवानी कौन हैं और हम उनके लिए मन्दिर क्यों खड़ा करें?

असीम शक्ति का नाम भवानी है। संसार के अनन्त प्रवाह में, अनादि का चक्र बड़ी तेज़ी से घूमता है। अनादि भगवान् से निकलने वाली असीम शक्ति ही चक्र को चलाती है। मनुष्य की दृष्टि में वह अलग-अलग आकारों और अनन्त रूपों में दिखायी देती है। हर एक आकार एक नया युग बनाता है। कभी वही शक्ति प्रेम का रूप लेती है कभी ज्ञान का, कभी वह त्याग होती है कभी दया। यही असीम शक्ति भवानी है, यही दुर्गा है, यही काली है और राधा प्यारी भी यही है। यही लक्ष्मी है, यही हमारी माँ और सारी सृष्टि को बनाने वाली है।

*

वर्तमान समय में, माँ शक्ति तथा बल की माता के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। वे शुद्ध शक्ति हैं।

माँ शक्ति के रूप में

लेकिन भारत में साँस धीमी चलती है, प्रेरणा आने में देर लगती है। भारत—प्राचीन भारत—माँ नया जन्म लेने की कोशिश कर रही है लेकिन यह कोशिश बेकार है। आख़िर उसे रोग क्या है? वह कितनी विशाल है! इतनी ही शक्तिशाली भी तो हो सकती है। कहीं कोई बड़ी कमी है, कोई ख़ास दोष है। उसे पकड़ पाना भी कठिन नहीं है। हमारे अन्दर सब कुछ है, सिर्फ़ शक्ति की, ऊर्जा की कमी है। हमने शक्ति को छोड़ दिया है और इसलिए शक्ति ने भी हमें छोड़ दिया है। हमारे हृदय में, हमारे मस्तिष्क में, हमारी भुजाओं में माँ नहीं हैं।

नये जन्म के लिए हमारे अन्दर इच्छा है और बहुत है। कितने प्रयास किये जा चुके हैं। कितने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन शुरू किये जा चुके हैं। लेकिन सबका एक ही परिणाम रहा या होने को है। थोड़ी देर के लिए वे चमक उठते हैं, फिर प्रेरणा मन्द पड़ जाती है, आग बुझ जाती है और अगर वे बचे भी रहें तो ख़ाली सीपियों या छिलकों के रूप में रहते हैं, जिनमें से ब्रह्म निकल गया है या वे तमस् के वश में हैं। हमारे प्रारम्भ महान् होते हैं लेकिन न तो उनका परिणाम आता है न फल।

जितनी अधिक गहराई में हम देखेंगे उतना ही अधिक हमें विश्वास हो जायेगा कि जिस चीज़ की कमी है और जिसे सभी अन्य चीज़ों से पहले हमें प्राप्त करना है वह है शक्ति—शक्ति शारीरिक, शक्ति मानसिक, शक्ति नैतिक, किन्तु सर्वोपरि शक्ति आध्यात्मिक जो अन्य सभी शक्तियों का अक्षय और अमिट स्रोत है। यदि हमारे पास शक्ति है तो अन्य हर चीज़ आसानी से और स्वाभाविक रूप से हमसे जुड़ जायेगी। शक्ति के अभाव में हम सपने के उन मनुष्यों के समान हैं जिनके पास हाथ हैं पर वे पकड़ नहीं सकते, प्रहार नहीं कर सकते, पैर तो हैं किन्तु दौड़ नहीं सकते।

करोड़ों की शक्ति

राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा,

भाषा का अलंकार या मन की कहानी नहीं है। जैसे भवानी महिषमर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की शक्ति के मिलने से हुआ था उसी तरह भारत माता की एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों की शक्ति से मिल कर बनी है। जिस शक्ति को हम भारतवर्ष या भवानी भारती कहते हैं वह भारत के तीस करोड़ की (उन दिनों आबादी तीस करोड़ ही थी—सं.) जीवित-जाग्रत् शक्ति है। लेकिन वह निष्क्रिय पड़ी है, तामसिक चक्र में बन्दी है, अपनी सन्तान की जड़ता में ही आनन्द लेने वाली वृत्ति और अज्ञान में फँसी है। इस तमस् से बचने का एक ही उपाय है—अपने अन्दर ब्रह्म को जगाना।

*

भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति समाप्त नहीं हो सकती क्योंकि मानवजाति के भविष्य के लिए वह बहुत आवश्यक है, उसे सबसे ऊँची और सबसे शानदार भूमिका के लिये चुना गया है। भारतवर्ष से ही सारे संसार का धर्म निकलेगा, वह शाश्वत सनातन धर्म जो सब धर्मों में, विज्ञान और दर्शन में समन्वय करेगा और मानवजाति को एक अन्तरात्मा बनायेगा। इसी तरह नैतिक क्षेत्र में उसे मानवजाति की म्लेच्छता, गँवारूपन, अशिष्ट ता दूर करके सारे संसार को आर्य बनाना है, लेकिन इससे पहले उसे अपने-आपको फिर से आर्य बनाना होगा।

CWSA खण्ड ६, पृ. ७९-८४

माँ का सन्देश

जब-जब तुम पूछोगे कि कौन हैं माँ भवानी, तब-तब वे स्वयं तुम्हें उत्तर देंगी, "मैं हूँ अनन्त 'ऊर्जा' जो जगत् के तथा तुम लोगों के शाश्वत रूपों से निकल कर जगत् में कलकल करती हुई बहती है। मैं हूँ 'विश्व' की जननी, जगतों की 'जननी', और तुम सबके लिए, जो उनकी पवित्र भूमि—आर्यभूमि—के बालक हो, जो उन्हीं की माटी से रचे गये हो, उन्हीं के सूर्य और हवाओं ने जिन्हें पाला-पोसा है—उनके लिए मैं भवानी भारती हूँ, भारत की माँ।"

फिर अगर तुम पूछो कि हम माँ भवानी का मन्दिर क्यों खड़ा करें, तो यह रहा उनका उत्तर, "क्योंकि मैंने इसका आदेश दिया है और इसलिए भी कि भावी धर्म का एक केन्द्र बना कर तुम 'शाश्वत' की तात्कालिक

इच्छा को आगे बढ़ाओगे और स्वयं अपने लिए भलाई कमाओगे जो तुम्हें इस लोक में और परलोक में भी बलशाली बना देगी। तुम एक राष्ट्र को खड़ा करने में सहायता दोगे, एक युग को दृढ़ करने, एक जगत् को 'आर्य' बनाने में मदद दोगे। और वह राष्ट्र तुम्हारा अपना है, वह युग स्वयं तुम्हारा और तुम्हारी सन्तानों का है, वह जगत् समुद्रों और पहाड़ों की सीमा में बँधा हुआ धरती का एक टुकड़ा नहीं है, बल्कि करोड़ों लोगों की धरती है जो एकजुट हो गये हैं।

तब आओ, माँ की वाणी को सुनो। वे पहले से ही हमारे हृदय में विराजमान हैं, स्वयं को हमारे हृदय में अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक्षा में हैं, पूजा किये जाने के लिए प्रतीक्षारत हैं—अभी वे सक्रिय नहीं हैं, क्योंकि हमारे अन्दर के प्रभु तमस् से घिरे हुए हैं, अतः वे निष्क्रिय हैं, वे अवसादपूर्ण भी हैं क्योंकि उनकी सन्तान सहायता के लिए उनका आह्वान नहीं करतीं। तुम, जो अपने अन्दर उनकी खुदबुदाहट का अनुभव कर रहे हो, अपने ऊपर का पड़ा काला लबादा उठा फेंको, आलस के कटघरे की दीवारों को तोड़ डालो, तुममें से प्रत्येक अपनी क्षमता के अनुसार, अपने शरीर द्वारा या अपनी बुद्धि अथवा अपनी वाणी, अपनी समृद्धि अथवा अपनी प्रार्थनाओं और पूजा-अर्चना के द्वारा माँ की सहायता के लिए, उनके आविर्भाव को सम्भव बनाने के लिए जी-जान से जुट जाये। पीछे मत हटो, क्योंकि जिनको उन्होंने बुलाया और जिन्होंने उनकी वाणी पर कान नहीं दिया, अपने आगमन के दिन भले वे उन पर कुपित हों, लेकिन वे जो उनके आगमन में लेशमात्र भी सहायक हुए, उनके लिए उनकी माँ का वह आनन सौन्दर्य तथा दयालुता से उस रोज़ कितनी भव्यता के साथ दीप्तिमयी कान्ति बिखेरेगा!

CWSA खण्ड ६, पृ. ८९

भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत संसार का गुरु है। संसार की भावी रचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवित-जाग्रत् आत्मा है। भारत संसार में आध्यात्मिक ज्ञान को जन्म दे रहा है।

श्रीमातृवाणी, खण्ड १३, पृ. ३८४

जागो, हे भारत!

यह वह घड़ी है जिसमें भारत तथा साथ ही समस्त जगत् की भावी नियति तथा उसकी गति का घुमाव एक सदी के लिए शक्तिशाली रूप में निश्चित कर लिया गया है, और किसी साधारण सदी के लिए नहीं, बल्कि ऐसी सदी के लिए जो अपने-आपमें एक युग-सन्धि है, मानवता के आन्तरिक तथा बाह्य इतिहास का एक ज़बरदस्त पलटाव है। हम अभी जिस प्रकार क्रिया करेंगे, उसी के अनुसार हमें हमारा कर्मफल प्राप्त होगा, और ऐसी शुभ घड़ी में इस तरह की हर एक पुकार, हर एक चुनाव, एक ऐसी अग्नि-परीक्षा होती है जिसे समान अभीप्सा तथा समान लक्ष्य रखने वाले मनुष्यों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। ऐसा हो कि ये चीज़ें प्रत्येक मनुष्य के अन्दर शीर्ष स्थान पा लें और हर एक 'नियति के स्वामी' के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का समर्थन कर लाभान्वित हो।

CWSA खण्ड १, पृ. ४१३ **श्रीअरविन्द**

वास्तविक कठिनाई

वास्तविक कठिनाई हमेशा हमारे अन्दर होती है, हमारे परिवेश में नहीं। व्यक्ति को अजेय बनाने के लिए तीन चीज़ें ज़रूरी हैं—'संकल्प', 'अनासक्ति' और 'श्रद्धा'। हमारे अन्दर अपना उद्धार करने के लिए संकल्प हो सकता है, लेकिन पर्याप्त श्रद्धा की कमी हो सकती है। हमें अपने-अपने चरम उद्धार के बारे में श्रद्धा हो सकती है परन्तु उसके लिए आवश्यक साधनों का उपयोग करने के लिए संकल्प-बल की कमी हो सकती है। और हो सकता है कि संकल्प-बल और श्रद्धा दोनों हों परन्तु हम बहुत उग्र फलासक्ति के साथ या घृणा, अन्धी उत्तेजना या ज़ोरदार उतावली के साथ उनका उपयोग करें जिससे अशुभ प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हों। इस कारण यह ज़रूरी है कि इतने महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के लिए मन, प्राण और शरीर से ज़्यादा ऊँची शक्ति की सहायता ली जाये ताकि अभूतपूर्व बाधाओं पर विजय प्राप्त हो सके। साधना की यही आवश्यकता है।

भगवान् हमारे अन्दर हैं। वे 'सर्वशक्तिमान्', 'सर्वव्यापक', 'सर्वज्ञ शक्ति' हैं। हम और वे एक ही प्रकृति के हैं और अगर हम उनके साथ नाता जोड़ कर अपने-आपको उनके हाथों में सौंप दें तो वे हमारे अन्दर अपनी शक्ति उँडेलेंगे और हम यह अनुभव कर सकेंगे कि हमारे अन्दर भी देवत्व, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता का अपना अंश है। रास्ता लम्बा है, लेकिन आत्म-समर्पण उसे छोटा बना देता है। मार्ग कठिन है, पर पूर्ण विश्वास उसे सरल बना देता है।

संकल्प सर्वशक्तिमान् होता है, पर उसे दिव्य संकल्प होना चाहिये जो निःस्वार्थ, शान्त और परिणामों के बारे में निश्चिन्त हो। ईसा ने कहा था, "अगर तुम्हारे अन्दर राई-भर श्रद्धा है तो तुम्हारे बुलाने पर पहाड़ भी तुम्हारे पास चला आयेगा।" यहाँ 'श्रद्धा' का अर्थ था, पूर्ण श्रद्धा और उसके साथ 'संकल्प-शक्ति'। श्रद्धा कभी ऊहापोह नहीं करती, वह जानती है, उसके पास दृष्टि होती है और वह देख सकती है कि भगवान् क्या चाहते हैं, वह जानती है कि भगवान् जो कुछ चाहते हैं वह होकर रहेगा। श्रद्धा—अन्ध श्रद्धा नहीं, आध्यात्मिक दृष्टिवाली श्रद्धा सर्वज्ञ हो सकती है।

संकल्प सर्वव्यापक भी होता है। वह जिन-जिन के साथ सम्पर्क में आता है उन सबके अन्दर अपने-आपको फैला सकता है, उन्हें कुछ समय के

लिए या स्थायी रूप में अपनी शक्ति, अपने विचार और अपने उत्साह का एक भाग दे सकता है। निःस्वार्थ और निःसन्देह विश्वासी संकल्प के द्वारा एक अकेले मनुष्य का विचार सारी जाति का विचार बन सकता है। एक अकेले वीर का संकल्प करोड़ों भीरुओं के हृदयों में वीरता जगा सकता है।

हमें यही साधना इष्ट है। हमारे उद्धार का यही मार्ग है। हम अपूर्ण श्रद्धा का अपूर्ण संकल्प और अपूर्ण अनासक्ति के साथ उपयोग करते आये हैं। लेकिन हमारे सामने जो काम है वह पहाड़ को हिलाने से कम कठिन नहीं है।

इस काम को सिद्ध करने वाली शक्ति मौजूद है, लेकिन है हमारे अन्दर छिपे हुए एक गुप्त कक्ष में और उस कक्ष की चाबी प्रभु के हाथों में है। चलो, उन्हें ढूँढ़ कर चाबी माँग लें।

CWSA खण्ड १, पृ. ५३६-३७

हिन्दुत्व तथा मानव सभ्यता

हिन्दुत्व को पाना मानव सभ्यता की उच्चतम प्रवृत्तियों को गले लगाना है, और उसे अपने साथ आधुनिक जीवन के सबसे अधिक प्राणिक आवेगों को भी ले चलना होगा। वह अपने साथ प्रजातन्त्र तथा समाजवाद को भी ले लेगा, उनके मल को दूर कर, उन्हें शुद्ध बना कर, आर्थिक व्यवस्था के अतिशय तनाव से परे ले जायेगा और उन्हें यह सिखायेगा कि वे मानवता की नैतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पूर्णता पर सतत दृष्टि रखें, क्योंकि वही वह लक्ष्य है जिस पर सबको पहुँचना है।

CWSA खण्ड ७, पृ. ६८५

श्रद्धा तथा निस्स्वार्थता की आवश्यकता

प्रभु ही सब कुछ कर रहे हैं। हम कुछ भी नहीं कर रहे। अगर वे चाहें कि हम दुःख-दर्द भोगें तो हम भोगते हैं, क्योंकि दूसरों को शक्ति देने के लिए दुःख-दर्द से गुज़रना अनिवार्य होता है। जब वे हमें दूर फेंक देते हैं, वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि हमारी और आवश्यकता नहीं होती। अगर चीज़ें बदतर हो जायें तो न केवल हमें जेल जाना होगा, बल्कि देश के लिए अपनी जान भी देनी होगी *(ध्यान रहे, श्रीअरविन्द ने यह सब सन्*

१९०७-०८ में लिखा था—सं.) और अगर वे जो एकदम आगे की पंक्ति में सीना ताने खड़े हैं या जो एकदम से अनिवार्य माने जाते हैं, उन्हें देश के लिए क़ुर्बानी भी देनी पड़े तो हम जान जायेंगे कि यह भी प्रभु को इष्ट था, कि यही वह कार्य है जिसे करने के लिए उन्होंने हमसे कहा है, और यह भी कि जिन्हें हटा कर दूर कर दिया गया है, उनके स्थान पर प्रभु कई सारे दूसरे लोगों को ले आयेंगे। वे स्वयं हमें सहारा दिये हुए हैं। स्वयं वे ही कार्य तथा कर्ता हैं। अपनों के हृदयों में वे शाश्वत रूप से बसे हुए हैं।... कई हैं जो अपने देश के लिए मर-मिटना चाहते हैं, अपने देशवासियों के लिए दुःख-कष्ट झेलने के लिए तैयार हैं, वे कहते हैं कि भगवान् सिर्फ़ मेरे अन्दर नहीं हैं, वे हम सभी के अन्दर विराजमान हैं; तुम्हारे अन्दर स्थित भगवान् से मैं प्रेम करता हूँ, उन्हीं के लिए मैं दुःख-कष्ट उठाना चाहता हूँ। इसी कारण कइयों ने स्वयं को देश पर न्योछावर कर दिया। प्रभु जानते हैं कि मनुष्यों को किस दिशा में मोड़ा जाये। जब 'उनकी' इच्छा होगी वे मनुष्यों को रास्ता सुझा देंगे।

एक और चीज़ है, जो सचमुच श्रद्धा का ही दूसरा नाम है, वह है निस्स्वार्थता... यह एक धर्म है जिसे हम जीवन में उतारने की कोशिश कर रहे हैं। यह एक धर्म है जिसके द्वारा हम राष्ट्र में अपने देशवासियों में भगवान् को उपलब्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं। हम उन्हें तीस करोड़ लोगों में चरितार्थ करने का प्रयत्न कर रहे हैं, हममें से कई सचेतन रूप से तो कुछ अचेतन रूप से; हम अपने हित के लिए नहीं बल्कि देश के हित के लिए कार्य करना और मर-मिटना चाहते हैं। बंगाल के किसी युवा कार्यकर्ता को जब जेल भेजा जाता है, जब उस पर अत्याचार किया जाता है, तो उस अत्याचार में वह दुःख की चीस अनुभव नहीं करता, वह दुःख-कष्ट से घबराता नहीं। वह सीना तान कर आगे बढ़ता है और हर्ष के ग़ुबार में कहता है—"स्वयं को समर्पित करने का समय आ गया है, और मुझे प्रभु को धन्यवाद देना है कि उनकी वेदी पर अपना मस्तक चढ़ाने का मेरा समय आ गया है और उन्होंने मेरे देशवासियों की भलाई में हाथ बँटाने के लिए मुझे चुना। यह मेरे लिए हर्षातिरेक का भव्यतम मुहूर्त है और मेरे जीवन की उत्कृष्टतम परिपूर्ति।" यह है हमारे धर्म का दूसरा पहलू, और यही है इस विचार को पूरी तरह से नकारना कि हमारा

अपना अलग अस्तित्व है, और अपनी उच्चतर आत्मा को उन तीस करोड़ लोगों में पाना जिनमें स्वयं प्रभु वास करते हैं।

तीसरी चीज़ है, जो फिर श्रद्धा और निस्स्वार्थता का ही दूसरा नाम है, और वह है साहस। जब तुम भगवान् में विश्वास करते हो, जब तुम्हारे अन्दर यह श्रद्धा होती है कि भगवान् ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, इस पर पूरा-पक्का विश्वास होता है कि जो कुछ हो रहा है वह सब भगवान् ही कर रहे हैं, कि तुम कुछ नहीं कर रहे, तो फिर भला तुम्हें किस चीज़ से डरना? जब यही तुम्हारा पन्थ, तुम्हारा धर्म है कि तुम स्वयं को इस अभियान में झोंक दो, अपनी धन-दौलत, अपना शरीर, अपना जीवन—जो कुछ तुम्हारे पास है वह सब अपने देशवासियों पर न्योछावर कर दो तो डरने को रह ही क्या जाता है भला? तब कोई चीज़ नहीं होती जिससे तुम भय खाओ। भले तुम्हें इस जगत् की अदालत के सामने खड़ा कर दिया जाये, तुम सब कुछ का सामना साहस के साथ कर सकोगे। क्योंकि स्वयं तुम्हारे धर्म का अर्थ है कि तुम्हारे अन्दर साहस है। कारण, वह तुम नहीं हो, तुम्हारे अन्दर स्थित कोई है। इन सारी अदालतों, जगत् की सारी शक्तियों का उससे क्या लेना-देना जो तुम्हारे अन्दर विराजमान है, वह जो अजर-अमर है, वह जिसे न शस्त्र भेद सकते हैं, न आग जला सकती है, जल जिसे डुबो नहीं सकता...

नैनं छिन्दति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः

उसे न कारागार बन्दी बना सकता है, न सूली उसका कुछ बिगाड़ सकती है। जब तुम अपने अन्दर स्थित उन परम देवाधिदेव के बारे में सचेतन हो तो डर किस बात का? भय किस चीज़ का? तब साहस अनिवार्यता बन जाता है, साहस सहज हो जाता है, साहस अपरिहार्य बन उठता है।... अगर तुम्हारे अन्दर श्रद्धा तथा निस्स्वार्थता की भागवत शक्ति न हो तो तुम दूसरी आसक्तियों से बच कर नहीं निकल सकते, तब तुम अपना दुःख-दर्द बस ऐसे किसी परिवर्तन के लिए नहीं सहना चाहोगे जिसमें तुम्हारा कोई लाभ न हो। ऐसे स्रोत से साहस कैसे फूट सकता है भला? लेकिन जब तुम अपने अन्दर एक उच्चतर विचार को पोसते हो, जब तुमने इसे चरितार्थ कर लिया हो कि तुम्हारे अपने पास कुछ

नहीं है, कि तुम स्वयं कुछ नहीं हो और यह कि इस देश के तीस करोड़ इन्सान देश में भगवान्-सदृश हैं, ऐसी अनमोल वस्तु हैं जिन्हें धन-दौलत, धरती-मनुष्य इत्यादि से नहीं मापा जा सकता, जब तुम्हें यह बोध हो जायेगा कि यह सब अजर-अमर है, कि जिस विचार को तुम कार्यान्वित कर रहे हो वह अमर है, और यह भी कि एक अमरा-अजरा शक्ति तुम्हारे अन्दर कार्य कर रही है। बाक़ी किसी भी आसक्ति का कोई मूल्य नहीं। तब तुम्हारे मन से अन्य सभी सोच-विचार ग़ायब हो जाते हैं, और जैसा कि मैंने कहा, तब साहस को पोषण देने की आवश्यकता नहीं होती। तुम्हें उस परमा शक्ति के द्वारा आगे बढ़ाया जाता है। जीवन से मरण तक तुम्हारी रक्षा की जाती है। ठीक मृत्यु के क्षण तुम्हें अपनी अमरता का अनुभव होता है। दुःख-दर्द की सबसे बुरी घड़ियों में तुम्हें यह भाव होता है कि तुम अपराजेय हो।

CWSA खण्ड ७, पृ. ८२७-३०

डरो मत

हमारा धर्म हमारे राष्ट्र का आत्म-सम्मान है, आत्म-बलिदान ही हमारी एकमात्र क्रिया या हमारा कर्तव्य है। अपने अन्दर के भागवत गुणों को चमकने का हमें उचित अवसर देना चाहिये। अपने अन्दर की तुच्छ भावनाओं का त्याग करना अनिवार्य है। अगर तुम्हें जान गँवानी पड़े तो डरो मत। पीछे मत हटो; राष्ट्र के हित के लिए कष्ट सहो। प्रभु तुम्हारे सहारे हैं। अगर तुम ऐसा करोगे तो भारतवर्ष अपनी भूतपूर्व गरिमा और भव्यता क्षण-भर में पुनः प्राप्त कर लेगा। जगत् के स्वतन्त्र राष्ट्रों से कन्धे-से-कन्धा मिला कर अपना स्थान पा लेगा; दूसरे राष्ट्रों को वह प्रशिक्षित करेगा; सच्ची शिक्षा की कान्ति बिखेरेगा, और वेदान्त के सिद्धान्तों को मन में बिठायेगा। मानवजाति तथा सारे संसार को लाभान्वित करने के लिए हमारा राष्ट्र सामने आ जायेगा। उसके सम्मुख सारा संसार थरथरायेगा! लेकिन कब होगा यह? केवल तभी जब हम सभी राष्ट्र का ऋण चुकाने के लिए तैयार औ' तत्पर हों। CWSA खण्ड ७, पृ. ८६०

यह एकता और पारस्परिक समझ द्वारा शासन करने का समय है। श्रीमाँ

क्रान्तियाँ

क्रान्तियाँ क्या-क्या मोड़ अपनायेंगी इस सबके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, वे एकदम से बेलगाम होती हैं। समुद्र के बहाव से क्या कोई कह सकता है कि वह कैसे बहे? हवा बहती है, कौन-सी मानव समझदारी उसकी गति का नियन्त्रण कर सकती है? प्रभु की प्रज्ञा ही क्रान्तियों का एकमात्र विधान है और हमें अपने-आपको उस 'प्रज्ञा' द्वारा चुने 'एजेंट' के अतिरिक्त और कुछ मानने का अधिकार नहीं है। जब हमारा कार्य पूरा हो जायेगा तब हमें स्पष्ट रूप से यह अनुभव करना और प्रसन्न होना चाहिये कि हमें इतना योगदान देने का अवसर मिला। अगर इतिहास में हमारा नाम मदद करने वाले उन कार्यकर्ताओं की सूची में आ जाये जिन्होंने कर्म और वाचा इत्यादि से देश का बहुत भला किया, या महान् भारत की स्वतन्त्रता के लिए चुपचाप दुःख-कष्ट झेले, क्या वह हमारी महानतम सेवाओं के लिए उचित पुरस्कार होगा? नहीं, इतिहास की पुस्तकों में भले हम गुमनाम रह जायें, लेकिन अन्तिम साँस लेते समय अगर हमारे अन्दर यह चेतना बनी रहे कि भगवान् का महान् रथ आगे खींचने में हमारा भी कुछ योगदान रहा था, भले वह एकदम से नगण्य क्यों न रहा हो और केवल उँगली का स्पर्श-भर क्यों न हुआ हो। लेकिन आख़िरकार सेवा करने की ये सब बातें क्या महत्त्वपूर्ण हैं? क्या हम माँ की सेवा पुरस्कार पाने के लिए करते हैं या प्रभु का कार्य करने के लिए हम किराये पर लगे हैं? देशभक्त अपने देश के लिए जीता है क्योंकि यही उसका कर्तव्य है; वह भारत माता के लिए अपनी जान गँवा देता है क्योंकि माँ की यही माँग है। बस यही है देशभक्ति का सारतत्त्व।

CWSA खण्ड ७, पृ. ८६९-७०

सञ्जीवनी मन्त्र

जब कोई महान् व्यक्ति धूल से उठता है तो उसका सञ्जीवनी मन्त्र या उसके पुनरुज्जीवन की शक्ति कौन-सी होती है? भारत में दो महान् मन्त्र हैं, 'वन्दे मातरम्' का मन्त्र जो धरती माता के लिए उद्भूत प्रेम का सार्वजनिक तथा वैश्व आवाहन है, एक और अधिक गुह्य और गुप्त मन्त्र है जो अभी तक उद्घाटित नहीं हुआ है। 'वन्दे मातरम्' का मन्त्र संसार

को पहले एक बार विन्ध्य-पहाड़ियों में बसने वाले संन्यासियों ने दिया था। वह हमारे अपने देशवासियों के कपट के कारण लुप्त हो गया क्योंकि तब राष्ट्र पुनरुत्थान के लिए तैयार नहीं था और तब समय से पहले का कोई भी जागरण बड़ी तेज़ी से सब कुछ नीचे धँसा देता। लेकिन १८९७ के भीषण भूकम्प के समय संन्यासियों ने एक वाणी सुनी, और वे ईश्वर द्वारा दिये आदेश के प्रति सचेतन हो गये कि भारत का पुनर्जागरण होना चाहिये, वह मन्त्र दोबारा जगत् के सम्मुख उद्घाटित हुआ। वह लोगों के हृदयों में गुञ्जित-प्रतिगुञ्जित होने लगा और नीरवता में जब वह पुकार कुछ महान् आत्माओं में परिपक्व हो गयी तब सारा राष्ट्र उस रहस्योद्घाटन के प्रति सचेतन हो गया।

CWSA खण्ड ७, पृ. ८७७

भारत का 'मिशन'

भारत के साथ जुड़ा है जगत् का भविष्य। भारत जब कभी अपनी निद्रा से जाग उठेगा, वह जगत् को प्रकाश की ऐसी भव्य किरणें प्रदान करेगा जो राष्ट्रों को प्रदीप्त करने के लिए पर्याप्त होंगी। भारत के लिए क्षण-भर में प्राप्त विचार को पाने में औरों को सदियाँ गुज़ारनी पड़ती हैं।

भगवान् ने भारत को 'प्राचीन प्रज्ञा' की पुस्तक प्रदान की और आदेश दिया कि जब तक उसे खोलने का समय न आये वह उसे अपने हृदय में सीलबन्द रखे। कभी-कभी उसमें से एक पृष्ठ या एक अध्याय खोला जाता है, कभी-कभी बस एक ही वाक्य दर्शाया जाता है। ऐसे वाक्य युगों के लिए प्रेरणा बन जाते हैं और मानवजाति उन पर सैकड़ों-सैकड़ों वर्ष फलती-फूलती रहती है। और जब भारत सोता है तो भौतिकवाद तेज़ी से फैलता है और प्रकाश अन्धकार में विलीन हो जाता है। लेकिन जैसे ही भौतिकवाद सोचता है कि चलो, जगत् में अब मेरी जीत हुई, और लो! वैसे ही पूर्व से प्रकाश की एक बाढ़ आती है, और तब कहाँ चला जाता है वह भौतिकवाद, वह सांसारिकता? अपने मूल निवास रात्रि के गर्भ में।

CWSA खण्ड ७, पृ. ८९०

आओ, हम सब भारत की महानता के लिए कार्य करें। —श्रीमाँ

स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व-भाव का सच्चा उद्‌गम

भारत का मिशन है मानवता को मानव स्वतन्त्रता, मानव समानता तथा मानव भ्रातृत्व के सच्चे उद्‌गम की ओर पुनः निर्देशित करना। जब मनुष्य आत्मा में मुक्त हो, तब अन्य समस्त मुक्ति उसके अधिकार में आ जाती है; क्योंकि भगवान् मुक्त हैं और उन्हें बाँधा नहीं जा सकता। जब वह भ्रान्ति से मुक्त हो जाता है तब वह विश्व की भागवत समानता देखने लगता है जो स्वयं को प्रेम तथा न्याय के माध्यम से परिपूर्ण करती है, और यह दृष्टि अपने-आपको सरकार तथा समाज के क़ानून में सञ्चारित करती है। जब मनुष्य इस भागवत समानता को देखने लगता है तब वह समस्त विश्व का भाई बन जाता है और जिस स्तर पर भी वह रखा जाता है वह प्रेम के विधान द्वारा, न्याय के विधान द्वारा अपने भाइयों के समान सभी मनुष्यों की सेवा करता है। जब यह दृष्टि धर्म का, दर्शन का, सामाजिक अनुमान का तथा राजनीतिक अभीप्सा का आधार बन जाती है, तब समाज की संरचना में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृभाव अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लेते हैं और सत्ययुग लौट आता है। यह प्रजातन्त्र की एशियाई व्याख्या है और इसे विश्व को देने के पहले भारत को अपने लिए इसका अनुसन्धान करना होगा। प्रत्येक मनुष्य का धर्म है आत्मा में मुक्त होना, बाध्य होकर नहीं बल्कि प्रेम से सेवानिष्ठ बनना, आत्मा में एक समान होना, किसी के स्वार्थवश नहीं बल्कि सेवा की अपनी क्षमता के अनुसार समाज में अपना स्थान प्राप्त करना, दासता की बेड़ियों में न बँध कर अथवा शोषक-शोषित या भक्षक-भक्ष्य के सम्बन्धों द्वारा नहीं बल्कि प्रेम व सेवा के बन्धन द्वारा अपने भ्राता-मनुष्यों के साथ सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध में रहना। कहा जाता है कि प्रजातन्त्र मानवाधिकारों पर आधारित होता है। इसका उत्तर यह दिया गया है कि इसे तो बल्कि मनुष्य के कर्तव्यों पर आधारित होना चाहिये। किन्तु अधिकार और कर्तव्य दोनों यूरोपीय धारणाएँ हैं। भारतीय धारणा धर्म है जिसमें अधिकार और कर्तव्य अपने कृत्रिम विरोध-भाव को—जो स्वार्थ को कर्म का मूल मानने वाले विश्व-दृष्टिकोण की उपज है—भूल जाते हैं और अपने गहरे तथा शाश्वत एकत्व को पुनःप्राप्त कर लेते हैं। प्रजातन्त्र का आधार धर्म है जिसे एशिया को समझना चाहिये, क्योंकि इसी में एशिया की अन्तरात्मा तथा यूरोप की अन्तरात्मा का भेद छिपा हुआ

है। धर्म के द्वारा ही एशिया का क्रमविकास स्वयं को सम्पन्न करता है; यही उसका रहस्य है।
CWSA खण्ड ७, पृ. ९३१-३२

वर्तमान क्षण की आवश्यकता

जो कुछ हम करते हैं, करने की चेष्टा करते हैं वह सब श्रद्धा से आगे बढ़ता है, और अगर हमारे अन्दर श्रद्धा की कमी हो तो हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। जब हमारी श्रद्धा कमज़ोर हो तो हमारा कार्य ढीला पड़ जाता है और हमें बारम्बार असफलताओं का सामना करना पड़ता है; लेकिन अगर हमारे हृदय में श्रद्धा हो तो कार्य हमारे लिए कर दिये जाते हैं। इस मौलिक साहस के बिना आज तक कोई भी महान् कार्य सिद्ध नहीं हुआ। अपने अहंकार से दिग्भ्रान्त हम समझते हैं कि हम ही काम कर रहे हैं, कि हम जो परिणाम पा रहे हैं वह हमारा ही सर्जन है, और जब कुछ करना होता है तो हम अपने-आपसे पूछते हैं कि क्या हमारे अन्दर इस कार्य को करने के लिए पर्याप्त शक्ति, साधन, आवश्यक गुण हैं या नहीं, लेकिन वास्तव में सभी कार्य भगवान् की इच्छा से सम्पन्न होते हैं और जब हमारे कार्यों के उत्स में उनके प्रति श्रद्धा होती है तो सफलता भी अवश्यम्भावी है। कभी-कभी किसी चीज़ को पाने के लिए हमारे अन्दर तीव्र चाह होती है और हमारी इच्छा पूरी हो जाती है। वह इच्छा सचमुच एक प्रार्थना थी, और सभी सच्ची प्रार्थनाओं को उत्तर मिलता ही है। हो सकता है कि सचेतन रूप से वह भगवान् को सम्बोधित न की गयी हो, क्योंकि प्रार्थनाएँ हमेशा शब्दों में अनूदित नहीं होतीं, वह होती है एक अभीप्सा। जब हम अभीप्सा करते हैं, हम प्रार्थना कर रहे होते हैं। लेकिन अभीप्सा को एकदम, पूरी तरह से निस्स्वार्थ होना चाहिये, अगर उसे सफल होना है तो हमें उसे अपने निम्न उद्देश्यों के तुच्छ लाभों के विचार से घुला-मिला नहीं देना चाहिये। जब हम स्वयं को अपनी अभीप्साओं के साथ मिला-जुला देते हैं तो हम उतने ही अनुपात में अपनी प्रार्थना के बल को कमज़ोर बना देते हैं और उसी अनुपात में सफलता में भी कमी आ जाती है।
CWSA खण्ड ७, पृ. ९३७

स्वराज्य को जीना

लेकिन हम स्वराज्य कैसे जी सकते हैं? अहं का विचार त्याग कर और उसकी जगह राष्ट्र के विचार की प्रतिष्ठा करके। जैसे चैतन्य निमाई पण्डित न रह कर कृष्ण बन जाते थे, राधा बन जाते थे, बलराम बन जाते थे, उसी तरह हर आदमी अपना-अपना रूप न रह कर देश में, राष्ट्र में निवास करे। जैसे मुमुक्षु का मन सदा मोक्ष में लगा रहता है उसी तरह हमारे मन देश के पुनरुत्थान में लगे रहें। हमारा त्याग गुमनाम तपस्वी के जैसा पूर्ण हो। अपनी स्वाधीन, महिमामयी माँ के दर्शन करने के लिए हमारे अन्दर वही सर्वग्राही पागलपन हो जो श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए चैतन्य में था। हमारा आत्म-त्याग वैसा ही सम्पूर्ण और उत्साहपूर्ण हो जैसा जगाई-मधाई में था जिन्होंने गौरांग के संकीर्तन में भाग लेने के लिए समस्त राज-पाट छोड़ दिया। वेदी पर हमारी बलि वैसी ही उदारतापूर्ण और कठोर होनी चाहिये जैसी कार्थेज माता-पिता की होती थी जो अपने बालकों को अग्नि के देवता मालोख को अर्पित करते थे। अगर हमारे आत्म-त्याग की पूर्णता में किसी तरह की शर्त के कारण कोई बाधा पड़ती है, कोई लेन-देन का भाव आकर हमारी बलि का मूल्य कम कर देता है, अगर कोई सन्देह हमारी श्रद्धा और हमारे उत्साह को बिगाड़ देता है, अगर कोई स्वार्थभरा विचार हमारे प्रेम की पवित्रता को अपवित्र कर जाता है तो माँ सन्तुष्ट नहीं होंगी और अपने-आपको दूर ही रखेंगी। हम माँ का आवाहन तो करते हैं परन्तु यह आवाहन हृदय की गहराई से नहीं आता। माँ के चरण देहली तक आ चुके हैं लेकिन वे अन्दर आने से पहले पुकार, हृदय की गहराइयों से आने वाली सच्ची पुकार की प्रतीक्षा कर रही हैं। हम अभी तक अपने और देश के हितों के बारे में सकुचा रहे हैं। हम रुपये में एक आना तो माँ को देना चाहते हैं और पन्द्रह आने अपने लिए, अपने बाल-बच्चों के लिए, अपनी सुख-सम्पदा के लिए, अपनी ख्याति और सुरक्षा के लिए रखना चाहते हैं। माँ अपने-आपको देने से पहले हमारे सर्वस्व की माँग करती हैं। जब तक राजा सुरथ ने अपनी शिराओं का रक्त तक अर्पित नहीं कर दिया तब तक माँ ने उसे दर्शन देकर वरदान माँगने के लिए नहीं कहा। जब तक शिवाजी अपना मस्तक चढ़ाने के लिए तैयार नहीं हो गये तब तक साक्षात् भवानी उनके सामने प्रकट नहीं हुईं और उन्हें अपने

लोगों को स्वाधीन करने का आदेश नहीं दिया।

जिन लोगों ने देशों को स्वाधीनता दिलवायी है उन्हें सफलता का मुकुट पाने से पहले पूर्ण त्याग की अग्नि-परीक्षाओं में से निकलना पड़ा है। और जो जो लोग भारत को स्वतन्त्र देखना चाहते हैं उन्हें माँ की माँगी हुई क़ीमत पहले चुकानी पड़ेगी। हम औद्यौगिक नव जन्म, राजनीतिक जागरण, नव शिक्षण आदि की जो योजनाएँ बना रहे हैं वे सब गौण हैं। सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है एक गम्भीर आन्तरिक नव जीवन जो उन सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। माँ हमसे कोई योजना, कोई नक़्शे, कोई तरकीब बताने की माँग नहीं कर रहीं। वे अपने-आप ही योजना बनायेंगी, नक़्शे तैयार करेंगी और तरकीबें बतलायेंगी और उनकी बतलायी हुई चीज़ें हमारी चीज़ों से बहुत ज़्यादा अच्छी होंगी। वे हमसे हमारे हृदय की, हमारे जीवन की माँग कर रही हैं, उससे कुछ कम नहीं और उससे कुछ अधिक भी नहीं। स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा, स्वराज्य की व्यवस्था आदि के द्वारा हम उनके आगे आत्म-निवेदन कर सकते हैं। माँ यह नहीं देखेंगी कि हमने इन दिशाओं में कितना कुछ किया है, वे तो यह देखना चाहेंगी कि हमने अपने-आपको, अपने परिश्रम को, अपनी सुख-सुविधा को, अपनी सुरक्षा को, और अपने जीवन को किस हद तक दिया है।

नव जागरण वास्तव में नव जन्म है और नव जन्म बुद्धि, भरी थैली, नीति या मशीन बदलने से नहीं आता। नव जन्म आता है एक नया हृदय पाने से, हम जो कुछ हैं उस सबकी यज्ञाग्नि में आहुति देने से और माँ के अन्दर एक नया जन्म पाने से। हमसे आत्म-त्याग की माँग की जाती है। माँ हमसे पूछती हैं : "तुममें से कितने मेरे लिए जियेंगे, कितने हैं जो मेरे लिए मरेंगे?" और माँ उत्तर की प्रतीक्षा में हैं।

CWSA खण्ड ७, पृ. १०३१-३३

भारत को भारत रहना है

यदि भारत यूरोप के पदचिह्नों पर चलता है, उसके राजनीतिक आदर्शों, सामाजिक पद्धति, आर्थिक सिद्धान्तों को स्वीकार करता है, तब वह भी उन्हीं रोगों का शिकार बन जायेगा। ऐसी परिणति न भारत के लिए और न यूरोप के हित में अच्छी होगी। यदि भारत यूरोप का भौतिक प्रान्त बन

कर रह जाता है तब वह अपनी स्वाभाविक महानता को कभी उपलब्ध नहीं करेगा अथवा अपने अन्दर की सम्भावनाओं को कभी संसिद्ध नहीं कर पायेगा। *परधर्मो भयावहः*, दूसरे के धर्म को स्वीकार करना संकटपूर्ण होता है। यह मनुष्य अथवा राष्ट्र को उसके जीवन और प्राण के रहस्य से वञ्चित कर देता है और एक मुक्त, विशाल तथा प्रकृति के जैविक विकास के स्थान पर एक अस्वाभाविक तथा अवरुद्ध विकास ले आता है। जब भी किसी राष्ट्र ने अपने अस्तित्व के प्रयोजन का त्याग किया, उसकी प्रगति रुक गयी। भारत को भारत ही रहना होगा—यदि उसे अपनी निर्दिष्टभूमिका का पालन करना है। न ही यूरोप भारत पर अपनी सभ्यता का पैबन्द लगा कर लाभ ही उठा सकता है, क्योंकि अगर भारत, जो यूरोप की बीमारियों का सुनिश्चित चिकित्सक है, अपने-आप बीमारी के चंगुल में फँस जाये तो वह बीमारी लाइलाज रहेगी और यूरोपियन सभ्यता उसी तरह नष्ट हो जायेगी जैसे रोम के पतन के समय हुई थी, पहले अन्दर-ही-अन्दर सूख कर सड़ गयी, और अन्त में वही बाहर फूट पड़ी। राजनैतिक तथा आध्यात्मिक—दोनों ही आन्दोलनों की सफलता भारत के लिए बहुत आवश्यक है और उससे भी अधिक ज़रूरी है यूरोप के लिए। सारा संसार भारत को स्वतन्त्र देखने के लिए उत्सुक है ताकि भारत अपनी भारतीयता पुनः प्राप्त कर ले।

CWSA खण्ड ७, पृ. १०४१

यदि भारत को जीवित रहना है तब उसे पुनः युवा बनाना होगा।

उसमें वेगपूर्वक बहती तथा महातरंगों के समान उमड़ती ऊर्जा उँडेलनी होगी।

उसकी आत्मा को—प्राचीन काल में जैसा था—महान् उर्मियों के समान विशाल, शक्तिशाली, संकल्प के अनुकूल धीर या दुर्दान्त, कर्मण्यता अथवा शक्ति का सागर बनना होगा।

CWSA खण्ड ६, पृ. ८३ **श्रीअरविन्द**

एशिया की भूमिका

(भारत की स्वाधीनता के बाद इंग्लैंड का अचानक ह्रास शुरू हो गया। आज उसके सिर पर जो समस्याएँ मँडरा रही हैं उनकी कुछ समय पहले तक कल्पना भी न की जा सकती थी। इसी तरह पिछले कुछ समय से भारत ने जिस तरह उठना शुरू किया है वह भी चमत्कार से कम नहीं है। १९०८ में इस स्थिति का और आगामी कल का सुन्दर चित्रण है—सं.)

भारतीय प्रतिभा शुद्ध क्रिया के लिए नहीं है परन्तु क्रिया में चरितार्थ होने वाले विचार और अभीप्सा के लिए है। शरीर आन्तरिक आदेश का पालन करे उससे पहले अन्तर भली-भाँति सोच-विचार कर लेता है। भारतीय आन्तरिक जीवन-प्रधान है। उसका बाह्य जीवन उसकी अन्तरात्मा को प्रकट करता है। उसके विचार और उसकी क्रियाओं का यह घनिष्ठ सम्बन्ध ही उसकी सतत प्राण-शक्ति का रहस्य है। अन्य देशों की तरह भारत का बाह्य जीवन भी वृद्धि और ह्रास के अधीन है, उसमें भी बड़प्पन और पतन का ज्वार-भाटा आता है परन्तु जहाँ औरों के लिए अवधि और सीमा है वहाँ इसके लिए कोई सीमा नहीं है। जब कभी यमराज अपना कर लेने के लिए आते हैं, हिन्दू-जाति अमरता के स्रोत में डुबकी लगा लेती है, आत्मा के झरने में गोता लगाती है और फिर से नयी अवधि और नया जीवन लेकर निकल आती है। केवल भारत ने ही राष्ट्रीय अमरता देने वाले पीयूष की खोज की है। यह अमरता का रहस्य भारत को हज़ारों वर्ष पहले मिला था। वह इस थाती को सँजोये, सँभाले बैठा था ताकि जब संसार इसके योग्य हो जाये तो उसे भी भाग दे सके। अब उसका समय आ गया है। बड़े-बड़े देश अब अधोगति और मृत्यु के कगार पर जा पहुँचे हैं। यूरोपवासियों ने भौतिक जीवन को उसकी चरम सीमा तक पहुँचा दिया है, भौतिक जीवन के विज्ञान को पूर्ण बना दिया गया है। लेकिन वे ऐसी बीमारियों में फँसे हैं जिन्हें उनका विज्ञान ठीक नहीं कर सकता। इंग्लैंड ने अपनी व्यावहारिक बुद्धि से; फ़्रांस ने अपने निर्मल, तर्क-संगत मस्तिष्क से; जर्मनी ने अपनी मीमांसा-युक्त, चिन्तनशील प्रतिभा से; रूस ने अपनी भावनामय शक्ति से; अमरीका ने अपनी व्यापार-शक्ति से मानव विकास के लिए जितना हो सकता था किया, लेकिन अब वह सब अपनी

सीमा तक पहुँच रहे हैं। उनमें किसी चीज़ की कमी है जिसे यूरोप पूरा नहीं कर सकता। ठीक ऐसे ही समय एशिया जागा है क्योंकि संसार को उसकी ज़रूरत है। एशिया संसार के मन की शान्ति का अभिभावक है, यूरोप की पैदा की हुई बीमारियों का चिकित्सक है। उसे यह आदेश है कि समय-समय पर आत्म-चिन्तन, आत्म-निर्भरता, आत्म-लीनता से बाहर निकल कर कुछ समय के लिए सारे संसार पर छा जाये ताकि सभी राष्ट्र आकर उसके पास इकट्ठे हों—उस चीज़ के लिए जो केवल वही दे सकता है। जब यूरोप की बेचैन आत्मा ने, भौतिक जीवन में विज्ञान की खोज में एक नयी तह लगा दी, जब उसने राजनीति को नियन्त्रित कर लिया, समाज को नया आधार दिया, क़ानून का ढाँचा बदला, विज्ञान की फिर से खोज की तो आया एशिया—शान्त, मननशील और सुसंयत। उसने यूरोप की खोजों को अपने हाथ में ले लिया, उन अतियों को, उसके मतिभ्रंश को अपने अन्तर्भास के द्वारा, आध्यात्मिक प्रकाश के द्वारा ठीक करना उसका काम है। संसार में इस ज्योति को वही ला सकता है। जब यूनान और रोमवासियों ने अपने-आपको ख़तम कर दिया तो उनके छोड़े हुए काम को पूरा करने के लिए अपने मरुस्थल से निकल कर अरब जा पहुँचे। उन्होंने पुराने जगत् की सभ्यता को नया जीवन दिया और ज्ञान की खोज को एशियाई भावनाओं की गहराइयाँ प्रदान कीं। सदा-सर्वदा आरम्भ एशिया ने किया है और पूरा किया है यूरोप ने। यूरोप की शक्ति विस्तार में, ब्योरे में है, एशिया की संश्लेषण और समन्वय में। जब यूरोप जीवन या विचार के ब्योरों को पूरा कर लेता है तो वह उन्हें सामञ्जस्य देकर स्वरसंगति नहीं बिठा सकता और वह बौद्धिक अपधर्मों, व्यावहारिक उच्छृंखलताओं में जा गिरता है जो जीवन के तथ्यों का, प्रकृति की मानव सीमाओं का और सत्ता के परम सत्यों का विरोध करता है। अतः, यह एशिया का ही धर्म है कि जब यूरोप ठिठक जाये, व्यर्थ ऊहापोह के संघर्षों में, निष्प्रयोजन परीक्षणों और अपनी भूलों के परिणाम से बच निकलने के लिए असहाय प्रयासों में थक कर चूर हो जाये तो वह मानव विकास को अपने हाथों में ले ले। संसार के इतिहास में ऐसा समय आ गया है।

प्राचीन काल में भारत संसार से अलग-थलग, विचारों और शान्ति के लिए, मानों ऋषि-मुनियों की कुटिया के समान था। अपनी विशेष भौगोलिक

स्थिति के कारण वह बाक़ी मानवजाति से कटा हुआ-सा था। वह एक शान्त आश्रम की तरह था जहाँ अपनी समस्या पर विचार किया जाता था और जीवन के रहस्य खोले जाते थे। उसके चिन्तन के कण सारे एशिया पर कौंध जाते थे और अलग-अलग सभ्यताओं का निर्माण करते थे। उसकी सन्तान अन्य प्रजाओं को प्रकाश देती थी, उसकी अनन्त बुद्धिमत्ता की छींटों से दर्शन-शास्त्र उठ खड़े होते थे। जब बाधाएँ टूट गयीं और हिमालय के दर्रों से औरों ने प्रवेश करना शुरू किया तो भारत से शान्ति खिसक गयी। भारत को संघर्ष की सदियाँ बितानी पड़ीं, अतः क्षोभ का काल आया जिसमें उसी के बिखरे विचारों से उत्पन्न सभ्यताएँ बड़े आग्रहपूर्ण रूप में वापस आयीं और उस पर अपनी दृष्टि, अपने विचार लादने की कोशिश करने लगीं। उसके लिए वे अपने ही अतीत के बौद्धिक परीक्षणों की स्मृतियाँ थीं जिन्हें उठा कर एक ओर रख दिया गया था, इतना ही नहीं, भुला दिया गया था। उसने उन्हें उठा लिया, नये प्रकाश में उन पर फिर से विचार किया और फिर से अपना अंग बना लिया। उसने यूनानियों के साथ यही किया, सीचियनों के साथ, मुसलमानों के साथ ऐसा ही किया। वह अपने लौटते हुए सभी बच्चों के साथ ऐसा ही करेगा चाहे वह ईसाई धर्म हो या यूरोपीय विज्ञान और जड़वाद। आज उसे जितनी सामग्री को आत्मसात् करना है वह इतिहास में अद्वितीय और अनुपम है परन्तु उसके लिए यह बच्चों का खेल है। उसकी बुद्धि हर चीज़ को अपनी भुजाओं में ले सकती है, उसका अन्तर्भास हर एक की गहराई को नाप सकता है, उसकी मौलिकता पर कभी आँच नहीं आ सकती और वह दुनिया के बड़े-से-बड़े काम करने के लिए उपयुक्त है। अब निष्क्रियता का वह ज़माना गया जब भारत दूसरों की बातें सुना करता था। अब वह बाहर की चीज़ें लेकर उनकी नक़ल करने या उन्हीं में कुछ सुधार कर लेने से सन्तुष्ट न होगा। जापान की प्रतिभा नक़ल करने और सुधार करने में है, भारत की प्रतिभा मौलिक सूत्रपात करने में है। वह बाहरवालों के योगदान को अपनी अनुपम सृजनशक्ति के लिए कच्चे माल के रूप में स्वीकार कर सकता है। इंग्लैंड का काम था इस अनगढ़ कच्चे माल को हिन्दुस्तान तक पहुँचाना, लेकिन उसने भौतिक सफलता के गर्व में चूर होकर गुरु की भूमिका अपना ली। उसने अंशतः यह माना कि भारतवासी अबोध शिशु थे जिन्हें शिक्षा देना

उसका काम था, एक और दृष्टि से उसने यह समझा कि भारतवासी उसके ग़ुलाम थे जिन्हें स्वामी की सेवा के योग्य बनाना उसका कर्तव्य था। अब यह मज़ाक ख़तम हो चुका है। हिन्दुस्तान में इंग्लैंड का समय समाप्त हो चुका है। भगवान् की इच्छा थी कि कुछ समय के लिए इंग्लैंड भारतवर्ष पर राज करे। सारी दुनिया यह देख कर चकित रह गयी कि अंग्रेज़ ने कितनी आसानी से सारे देश को हथिया लिया। लोगों ने सोचा, यह अंग्रेज़ों की अप्रतिम प्रतिभा के कारण, उसके असामान्य गुणों के कारण सम्भव हो सका है। इंग्लैंड ने इस मान्यता को ख़ूब बढ़ावा दिया और इससे लाभ उठाया। सच्ची बात तो यह है कि इंग्लैंड ने भारतवर्ष को सचमुच तो जीता ही नहीं। उसे क्यों और कैसे का पता लगे उससे पहले भारत उसके हाथों में सौंप दिया गया। सामान्यतः जिन लोगों ने इंग्लैंड के लिए काम किया, कुछ अपवादों को छोड़ कर, वे बहुत छोटे आदमी थे और भागवत कृपा के बिना यूरोप में या कहीं और, इतिहास में अपने लिए कोई स्थान न बना पाते। भारत को हराने का सेहरा न तो जीतने वालों की विशेष प्रतिभा या क्षमता के सिर बाँधा जा सकता है, न परास्त जाति की दुर्बलता को ही इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह इतिहास का एक ऐसा चमत्कार है जिसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा उदाहरण था जिसमें किन्हीं विशेष गुणों के बिना ही एक महान् उद्देश्य सौंपा गया था और एक सौभाग्य-विशेष उसकी निगरानी कर रहा था कि वह अपने उद्देश्य को पूरा कर सके। यह उद्देश्य पूरा होते ही भगवान् का वह देवदूत जो इंग्लैंड की रक्षा करने के लिए उसके पास खड़ा है, जो हाथ के इशारे से आने वाली सभी कठिनाइयों और विपदाओं को दूर कर देता है, वह उसकी ढाल न बनेगा। इंग्लैंड यहाँ तभी तक रह सकता है जब तक भारत को उसकी ज़रूरत है, ज़रूरत पूरी होते ही उसे हट जाना होगा क्योंकि अंग्रेज़ी राज्य न तो अपने भुजबल से आया है, न अपने बलबूते पर खड़ा है जो वह ठहर सके। भारत का पुनरुद्धार शुरू हो चुका है। अगर इंग्लैंड सहायता करना चाहे तो उसकी सहायता लेकर, और न करना चाहे तो उसके बिना, और अगर वह विरोध करे तो विरोध के होते हुए, भारत अपने लक्ष्य को चरितार्थ करेगा।

CWSA खण्ड ७, पृ. १०१९-२२

यूरोप और एशिया

... यह कहना कि पूर्व अभी-अभी अपनी बाल्यावस्था से निकल रहा है जब कि यूरोप बूढ़ा और जर्जर हो गया है, प्रचलित मान्यताओं के बिलकुल विरुद्ध है पर इसमें एक गहरा सत्य है। पूर्व पश्चिम की अपेक्षा हज़ारों वर्ष पुराना भले हो पर केवल अधिक वर्षों के आधार पर ही किसी को बूढ़ा नहीं कहा जा सकता। लम्बा आयुष्य पाने वाली जातियों में बाल्यावस्था के जितने वर्ष होते हैं क्षणभंगुर जातियाँ उतने वर्षों में बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि सब कुछ ख़तम करके परम धाम को भी चली जाती हैं। एशिया हर चीज़ में बहुत विशाल है। एशिया का आकार-प्रकार बहुत विशाल है, उसकी गतिविधि विशाल और भव्य है। इसी तरह उसके जीवनकाल की गणना भी इसी तरह की जाती है। यूरोप शताब्दियों में जीता है और एशिया युगों में। यूरोप राष्ट्रों में बँटा हुआ है, एशिया सभ्यता में और संस्कृतियों में। सारे यूरोप में एक ही सभ्यता है, जिसका स्रोत एक ही है, वह पुरानी और कहीं से ली हुई है। एशिया में तीन सभ्यताएँ हैं, जिनमें से हर एक मौलिक और स्थानीय है। यूरोप की हर चीज़ छोटी, तेज़ और अल्पजीवी है, उसे अमरता का रहस्य नहीं मिला है। उसकी सभ्यता का मुख्य स्रोत है यूनान। वह दो-तीन शताब्दियों में बढ़ा, दो शताब्दियों तक फला-फूला और उसके बाद दो शताब्दियों में मुरझा कर समाप्त हो गया। बरसों की गिनती की जाये तो यूरोप के देश अभी कितने छोटे हैं, फिर भी स्पेन का तो प्राणान्त हो ही चुका है, ऑस्ट्रिया को लकवा मार गया है और अब विघटित होता जा रहा है, फ़्रांस को एक घातक और असाध्य रोग हो गया है, इंग्लैंड में विघटन और ह्रास के पहले लक्षण शुरू हो चुके हैं। सिर्फ़ जर्मनी और अमरीका स्वस्थ और विकसनशील यौवन के लक्षण दिखाते हैं। यूरोप के ख़ाली किये हुए स्थान को भरने के लिए एशिया, जो युवा, बलशाली, ओजस्वी, अमरता के उपहार से सम्पन्न, रूपान्तर के रहस्य से अवगत है, आगे आ रहा है। भविष्य पर वही छा जायेगा। केवल वही संसार को अमरता का रहस्य सिखा सकता है। यह रहस्य उसके पास है।

यूरोपीय लोग एशिया को जर्जर बताते हैं। उन्हें यह देख कर आश्चर्य और शायद निराशा भी हो कि अभी तो वह पूर्ण यौवन में प्रवेश कर

रहा है। यह ठीक है कि आज यूरोप विज्ञान, दर्शन, सभ्यता आदि के जिन शिखरों पर हाँफ़ते-काँपते चढ़ रहा है उन ऊँचाइयों तक एशिया बहुत पहले चढ़ चुका है, लेकिन उसके बाद कुछ ढील आ गयी थी और उसकी गति धीमी पड़ गयी थी। कुछ हानि और गड़बड़ हुई थी, ह्रास और अधोगति नहीं आयी। हम कह सकते हैं कि बाल्यावस्था से यौवन में प्रवेश करते हुए जो क्षणिक अव्यवस्था, अस्त-व्यस्तता आ जाती है, चीज़ें इधर-उधर हिल जाती हैं, यह उसी का प्रभाव था। उसकी महान् सभ्यताएँ, उसके महान् दर्शन, उसके कुशाग्र वैज्ञानिक अवलोकन और अन्तर्भास उसके बचपन के और अधकचरी शक्ति के खेल-खिलौने थे। ये शिशु-दानव के हलके-फुलके खेल थे जो हमें इस बात का संकेत देते हैं कि जब यह बालक बड़ा हो जायेगा तब क्या-क्या न करेगा। पहले भारत ने जो कुछ किया वह उसके निश्चय और उसकी कल्पना का फल था। उन दिनों मन अपने जीवन के भागवत स्रोत से नया-नया ही आया था और ये उसके पहले बचकाने प्रयास थे। अब वह प्रौढ़ और जीर्यमाण पश्चिम से वैज्ञानिक तौर-तरीक़े सीखेगा और उन्हें अधिक शक्ति और योग्यता के साथ विकास की ऐसी रेखाओं पर चलायेगा जहाँ पश्चिम फूहड़ नौसिखिया है। कहा है :

"पश्चिम की बुद्धिमत्ता तो पागलपन है
उथले पानी में तूफ़ान की तरह।"

उथलापन इसलिए है क्योंकि पश्चिम केवल भौतिक दृष्टि से और वह भी ऊपरी तल पर ही विकसित हुआ है। उसने जीवन की गहराइयों में जाकर जड़ों से शक्ति और स्थिरता नहीं प्राप्त की। बाहरी जीवन तो उस आन्तरिक जीवन की एक अपूर्ण अभिव्यक्ति-मात्र है। पिछले दिनों पूर्व और पश्चिम के मौलिक भेद के अच्छे उदाहरण मिले हैं। ऐसा कौन-सा यूरोपीय देश है जो अपने-आपको कुछ ही वर्षों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से इतना बदल लेता? जापान बदला है और वह भी कितनी अच्छी तरह, अपनी राष्ट्रीय अर्थनीति या जीवन को ज़रा भी धक्का दिये बिना। यह घटना-चक्र यूरोप के लिए इतना विजातीय और अनोखा है कि वह अभी तक इसे समझ नहीं पाया। वे बस इसी निष्कर्ष पर आ पाये

हैं कि जापान एक जादुई देश है। कौन-सा यूरोपीय देश अपने यहाँ की बुराइयों से इतनी आसानी से, इतनी तेज़ी से निबट सकता था जैसे चीन अपने यहाँ अफ़ीम खाने की लत से निबट रहा है? यूरोपीय आलोचक तो यह मानने को भी तैयार न होते थे कि चीन सचमुच अफ़ीम से पिण्ड छुड़ाना चाहता है। ज़रा कल्पना करके देखो, यदि इंग्लैंड में शराब की लत को दूर करने के लिए इस तरह का प्रयास किया जाये तो उसकी क्या गति होगी! अगर भारत इस तरह की विजय नहीं दिखा पा रहा तो उसका एक ही कारण है। सौ वर्ष के दयाहीन विदेशी राज्य ने उसे एकदम अस्त-व्यस्त कर दिया है, उसके शक्ति के केन्द्रों को विच्छिन्न करके प्रायः नष्ट कर डाला है। फिर भी भारत आगे बढ़ा है और बढ़ रहा है। संसार के इतिहास में ऐसा कोई देश नहीं है जो इस तरह इतने दिनों तक विदेशी राज्य के नीचे पिस कर भी ऐसी अदम्य शक्ति दिखला सका हो। यही नैतिक बल, यही जड़ तक पहुँच सकने की क्षमता, अपने अन्तर की गहराइयों में पैठ कर चमत्कारिक संकल्प-बल को खींच सकना, अपने स्व के ऊपर पूरा अधिकार—ये एशिया की शक्ति के रहस्य हैं। और शास्त्र हमें बतलाते हैं कि जो अपने ऊपर शासन कर सके वही जगत् का स्वामी हो सकता है। स्वराट् ही सम्राट् बन सकता है।

CWSA खण्ड ७, पृ. ५७४-७६

युगों-युगों का पुराना भारत मरा नहीं है और न ही उसने अपना अन्तिम सृजनात्मक सन्देश दे दिया है। वह जीवित है और उसे अभी भी अपने लिए तथा मानवजाति के लिए कुछ करना है। और जिसे अब जगाने का प्रयास करना है वह अंग्रेज़-बना भारतीय नहीं, पश्चिमी सभ्यता का आज्ञापरायण शिष्य नहीं—जो पश्चिम की सफलता-विफलता के चक्र को दोहराने के लिए निर्दिष्ट है, बल्कि अभी भी उस प्राचीन स्मरणातीत शक्ति को जगाना है जो अपने गहनतम स्वरूप की खोज कर रही है, प्रकाश और शक्ति के सर्वोच्च उद्गम की ओर अपने सिर को ऊँचा उठा रही है तथा अपने धर्म के सम्पूर्ण अर्थ तथा बृहत्तर रूप की खोज की ओर मुड़ रही है।
CWSA खण्ड २०, पृ. ४४४

दलबन्दी के बिना सरकार

देश को कठिनाई से उबारने के लिए क्या करना चाहिये? श्रीअरविन्द ने सभी मुश्किलों को पहले से ही देख लिया था और उन्होंने समाधान दे दिया है।...

और यह राजनीति से ऊपर है, देखो, यह दलबन्दी का प्रश्न नहीं, यह ऐसी बात नहीं है कि चूँकि कुछ उसके पक्ष में हैं अतः, स्वभावतः दूसरे उसके पक्ष में न होंगे। यह समस्त राजनीति से ऊपर है। राजनीति से परे देश को व्यवस्थित करना है। और यही एकमात्र तरीक़ा है। राजनीति में हमेशा लड़ाई, भद्दी लड़ाई होती है—भद्दी। स्थिति इतनी ख़राब हो गयी है। वे हमेशा मुझसे कहा करते थे कि चीज़ें बद से बदतर होती जायेंगी, क्योंकि यह इस युग का अन्त है। हम एक ऐसे युग में पदार्पण कर रहे हैं जहाँ चीज़ों को भिन्न तरीक़े से व्यवस्थित होना होगा। इसीलिए यह विषम काल है।...

राजनीति हमेशा दलबन्दी से, विचारों से और कर्तव्यों से भी सीमित होती है—जब तक कि हम ऐसी सरकार न बनायें जिसमें कोई दल न हो, ऐसी सरकार जो सभी विचारों को स्वीकार करे क्योंकि वह दलबन्दी से ऊपर है। दलबन्दी हमेशा एक सीमा होती है; यह एक बक्से की तरह है : तुम बक्से के अन्दर चले जाते हो *(माताजी हँसती हैं)*। निश्चय ही, अगर कुछ ऐसे लोग होते जो बिना किसी दल के सरकार में रहने का साहस करते—"हम किसी दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते! हम भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं"—तो चीज़ अद्‌भुत होगी।

चेतना को ऊपर उठाओ, ऊपर, दलबन्दी से ऊपर।

फिर, स्वभावतः, कुछ लोग जो राजनीतिक दल में नहीं आ सके—वे! यही है आगामी कल के लिए काम करना। आगामी कल में ऐसा ही होगा। यह सारा संघर्ष इसलिए है क्योंकि देश को आगे बढ़ना है, इन सभी पुरानी राजनीतिक आदतों से ऊपर उठना है। बिना किसी दल की सरकार। ओह! वह विलक्षण, अद्‌भुत होगा!

(२५ मई १९७०)

श्रीमाँ

आज का संसार

श्रीअरविन्द के शब्दों में हम "भागवत मुहूर्त" में जी रहे हैं और सारे संसार के रूपान्तरकारी विकास ने एक तेज़ और तीव्र गति अपना ली है।

*

यह सच है कि "हम" कठिन समय में से गुज़र रहे हैं ("हम" का अर्थ है संसार) लेकिन जो डिगेंगे नहीं वे उसमें से पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मज़बूत होकर निकलेंगे।

*

निश्चय ही हम ऐसे काल में नहीं जी रहे जब मनुष्यों को उनके अपने साधनों पर छोड़ दिया गया हो।

भगवान् ने उन्हें प्रबुद्ध करने के लिए अपनी चेतना को नीचे भेजा है। जो भी उससे लाभ उठा सकते हों उन्हें लाभ उठाना चाहिये।

*

समस्त उथल-पुथल के बावजूद सत्य की विजय होगी।

*

अस्तव्यस्तता के अन्दर भी भागवत व्यवस्था का बीज है।

*

अन्दर से चीज़ें सुधरती हुई मालूम होती हैं लेकिन बाहर से तो ऐसा लगता है कि विघटन द्वार पर खड़ा है। आख़िर हम हैं कहाँ?

एक सुन्दर उपलब्धि के सामने।

*

हर रोज़ चीज़ें ज़्यादा ज़्यादा बिगड़ती हुई मालूम होती हैं। वस्तुतः हमें पुरानी सड़ती हुई दुनिया से अधिकाधिक घृणा होती जा रही है और हमें एक ऐसे नये जगत् की स्थापना की आवश्यकता का अधिकाधिक विश्वास होता जा रहा है जो घिसे-पिटे रास्तों से दूर, जीवन का एक नया पहलू हो जिसमें नयी और अधिक सच्ची ज्योति अभिव्यक्त हो सके, एक नया जगत् आ सके जो स्वार्थभरी प्रतियोगिताओं और अहंकारपूर्ण संघर्षों पर आधारित न होकर सभी के कल्याण, ज्ञान और प्रगति के लिए व्यापक

उत्सुक प्रयास पर आधारित हो, एक ऐसा समाज हो जो धन के लोभ और भौतिक शक्ति की जगह आध्यात्मिक अभीप्सा पर आधारित हो।

*

मैं जो देखती हूँ वह आगामी कल की दुनिया है, लेकिन बीते कल की दुनिया अभी तक ज़िन्दा है और अभी कुछ समय और जीती रहेगी। पुरानी व्यवस्थाओं को तब तक चलने दो जब तक वे ज़िन्दा हैं।

धरती पर परिवर्तन धीरे-धीरे आते हैं।

चिन्ता न करो—भविष्य के लिए आशा बनाये रखो।

*

ठहरो और प्रतीक्षा करो। परिणाम निश्चित है—लेकिन मार्ग और समय अनिश्चित हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ७३-७४

हम देखते हैं कि इस समय पूरा संसार एक प्रकार के असन्तुलन और विशृंखलता की स्थिति में है। क्या इसका यह अर्थ है कि वह अपने-आपको एक नयी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए, 'सत्य' के अवतरण के लिए तैयार कर रहा है? या फिर यह अवतरण के विरुद्ध आसुरिक शक्तियों के विद्रोह का परिणाम है? इस सबमें भारत का क्या स्थान है?

दोनों बातें एक साथ हैं। यह तैयारी का एक विशृंखल तरीक़ा है। भारत को आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक होना चाहिये जो समझा सके कि क्या हो रहा है, और इस आन्दोलन को छोटा करने में सहायता दे। लेकिन, दुर्भाग्यवश, पश्चिम का अनुकरण करने की अन्धी महत्त्वाकांक्षा में वह जड़वादी बन गया है और अपनी आत्मा की उपेक्षा कर रहा है।

१३ अक्तूबर, १९६५

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९९

भारत और पाकिस्तान : विभाजन को जाना होगा

(अगस्त १९४७)

भारत आज स्वतन्त्र है किन्तु उसने एकता उपलब्ध नहीं की है।... हिन्दू और मुस्लिम का पुराना साम्प्रदायिक विभाजन देश के एक स्थायी राजनीतिक विभाजन के रूप में दृढ़ हो गया प्रतीत होता है। यह आशा की जानी चाहिये कि यह निर्धारित तथ्य सदा के लिए निर्धारित तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जायेगा या एक अस्थायी उपाय से कुछ और अधिक नहीं माना जायेगा। क्योंकि यदि यह विभाजन बना रहता है तब भारत गम्भीर रूप से कमज़ोर हो सकता है, यहाँ तक कि विकलांग बन सकता है। गृहयुद्ध हमेशा सम्भव बना रह सकता है। यहाँ तक कि नया आक्रमण तथा विदेशी अधीनता भी सम्भव है। भारत के आन्तरिक विकास तथा समृद्धि में बाधा पड़ सकती है। राष्ट्रों में भारत की स्थिति कमज़ोर पड़ सकती है। उसकी नियति को क्षति पहुँच सकती है, यहाँ तक कि उसे कुण्ठित किया जा सकता है। यह नहीं होगा; विभाजन को जाना होगा। हमें आशा करनी चाहिये कि यह न केवल शान्ति और मैत्री बल्कि समान कार्यक्रम की आवश्यकता की बढ़ती मान्यता के द्वारा, समान कार्यक्रम तथा उस उद्देश्य के लिए साधनों के सृजन द्वारा स्वाभाविक रूप से हो। इस प्रकार एकता अन्त में आ सकती है चाहे उसका रूप कुछ भी हो —उसका ठीक-ठीक रूप का व्यावहारिक महत्त्व हो सकता है, लेकिन उसका आधारभूत महत्त्व नहीं है। किन्तु, साधन कुछ भी हो, विभाजन को जाना होगा। एकता को उपलब्ध करना होगा और उसे उपलब्ध किया जायेगा, क्योंकि यह भारत के भविष्य की महानता के लिए अनिवार्य है।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ४७८-७९

दैनन्दिनी

अक्तूबर

१. प्राणिक आवेगों के सामने झुकना निश्चित रूप से उन्हें वश में करने का तरीक़ा नहीं है। तुम्हें अपने लिए एक अनुशासन बनाना चाहिये और अगर तुम प्राणिक दुर्भावना और मानसिक अवसादों से पिण्ड छुड़ाना चाहते हो तो हर हालत में उसे स्वयं पर लागू करना होगा। अनुशासन के बिना तुम जीवन में कुछ नहीं कर सकते और समस्त योग असम्भव हो जाता है।

२. श्रीमाँ के प्रति स्वयं को हमेशा खुला रखो, उन्हें हमेशा याद रखो तथा अन्य सभी प्रभावों को त्याग कर उनकी शक्ति को अपने अन्दर कार्य करने दो—यही योग का नियम है।

३. अध्ययन का महत्त्व तभी है जब तुम ठीक तरह से ज्ञान प्राप्त करने और मानसिक अनुशासन के लिए अध्ययन करो।

४. एक क्षण के लिए भी यह मत भूलो कि यह सब भगवान् ने अपने ही अन्दर से बनाया है। वे सब चीज़ों में उपस्थित ही नहीं हैं, बल्कि वे ही सब कुछ हैं। भेद मात्र अभिव्यक्ति और आविर्भाव में है। तुम यह भूल जाओ तो सब कुछ गँवा बैठते हो।

५. प्रगति का अन्त नहीं है—कहीं कोई अन्त नहीं है।

६. हम जो बन चुके हैं उसकी अपेक्षा हम जो बनना चाहते हैं उस पर अपनी एकाग्रता स्थिर करना हमारे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

७. मैं प्रस्ताव करती हूँ कि हम केवल वही करें जो ठीक और उचित हो, भविष्य के बारे में बहुत अधिक न सोचें, उसे भागवत कृपा की निगरानी में रहने दें।

८. हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखाएँ, अधिकाधिक बोध दें, हमारे अज्ञान को छिन्न-भिन्न कर दें, हमारे मनों को प्रकाश दें।

९. विश्व के आश्चर्यों का कहीं अन्त नहीं है। हम अपने छोटे-से अहंकार

की सीमाओं से जितना अधिक मुक्त होते चलें, उतना ही अधिक ये आश्चर्य अपने-आपको हमारे सम्मुख प्रकट करेंगे।

१०. हमारी चेतना एक छोटी-सी चिड़िया की तरह है, उसे अपने पंखों का उपयोग करना सीखना चाहिये।

बहुत ऊँचे उड़ो और तब तुम गहराइयों को खोज लोगे।

११. प्र : अपने-आपको भूल जाने का सबसे सरल मार्ग कौन-सा है।

उ : हमेशा ठीक चीज़, ठीक तरीक़े से, ठीक समय पर करो।

१२. अच्छा करने की कोशिश करो और यह कभी न भूलो कि भगवान् तुम्हें हर जगह देखते हैं।

१३. भलाई के प्यार के लिए भला करो, ईनाम के लिए नहीं। भला होने के आनन्द के लिए भले बनो, औरों की कृतज्ञता के लिए नहीं।

१४. ईर्ष्या, स्वार्थपूर्ण असन्तोष और आहत दर्प तुम्हें भागवत रक्षण से बाहर खींचता है, चेतना के द्वार को विरोधी आक्रमणों के लिए खोल देता है।

इन भ्रान्तिपूर्ण गतिविधियों को अपने अन्दर होने देने से इन्कार करके ही तुम विरोधी प्रभाव और उसके विपत्तिजनक परिणामों से छुटकारा पाने की आशा कर सकते हो।

१५. अगर तुम सचमुच कुछ भला करना चाहते हो तो सबसे अच्छी चीज़ जो तुम कर सकते हो वह यह है कि एक के बाद एक, पूरी सच्चाई के साथ अपने अन्दर विजय प्राप्त करो। इस तरह तुम संसार के लिए अपनी क्षमता के अनुसार अधिक-से-अधिक कर सकोगे।

१६. केवल अचञ्चलता और शान्ति में ही तुम जान सकते हो कि करने के लिए सबसे अच्छी चीज़ क्या है।

१७. उत्साह की क्षमता ऐसी चीज़ है जो तुम्हें अपने दीन, क्षुद्र, निम्न अहंकार से ऊपर उठा देती है।

१८. लापरवाही दुर्भावना का सबसे बुरा रूप है क्योंकि वह उस भागवत प्रेरणा तथा चेतना के प्रति समर्पण की अस्वीकृति है जो सतत सर्तकता की माँग करती है।

१९. पूर्णता के प्रति अभीप्सा सच्ची आध्यात्मिकता है।

२०. संसार में एक क्षण भी ऐसा नहीं होता जो कुछ नयी चीज़ नहीं लाता,

क्योंकि संसार निरन्तर बढ़ता जाता है। अगर मनुष्य इस विषय में सचेतन हो तो उसके लिए हमेशा सीखने-लायक़ कोई नयी चीज़ रहती ही है।

२१. तुम जगत् से भाग कर उसे नहीं बदल सकते। यहाँ काम करते हुए, नम्रता और विनय के साथ काम करते हुए उसे बदला जा सकता है, तुम्हारे हृदय में एक आग हो, ऐसी चीज़ हो जो आहुति की तरह जलती रहे।

२२. जो लोग सचमुच सशक्त, बलशाली होते हैं वे सर्वदा ही बहुत शान्त-स्थिर रहते हैं। दुर्बल ही उत्तेजित रहते हैं।

२३. अपनी समस्याओं को सच्चे हृदय के साथ भगवान् के हाथों में सौंप दो और वे तुम्हें सारी कठिनाइयों से उबार लेंगे।

२४. अपने सारे जीवन को अनुशासित करने के लिए प्रयत्न करने से पहले व्यक्ति को अपनी एक क्रिया को ही अनुशासन में रखने की कोशिश करनी चाहिये और तब तक करते रहनी चाहिये जब तक उसमें सफलता प्राप्त न हो जाये।

२५. किसी कठिनाई को नयी प्रगति के अवसर में बदलना अच्छा है।

२६. मधुरता हृदय की गहराई में है। कड़वाहट भागवत प्रेम के सूर्य के आगे गल जाती है। सच्ची अभीप्सा से सारे दोष मिट जाते हैं।

२७. जब तुम कोई प्रगति करना चाहते हो तो जिस कठिनाई को तुम जीतना चाहते हो वह तुम्हारी चेतना में महत्त्व और तीव्रता में दसगुनी बढ़ जाती है। तुम्हें केवल डटे रहना है। बस इतना ही; और वह चली जायेगी।

२८. अग्निपरीक्षाएँ सबके लिए हैं। उनका सामना करने के तरीक़े में फ़र्क होता है। कुछ लोग मुस्कुराते और कुछ बात का बतंगड़ बनाते हैं।

२९. कभी किसी कठिनाई के बारे में मत सोचो—तुम उसे शक्ति देते हो।

३०. मैं उस दिन की राह देख रही हूँ जब व्यवस्था अव्यवस्था पर विजय पा लेगी और सामञ्जस्य अस्त-व्यस्तता का स्वामी होगा। मैं इस दिशा में किये गये हर प्रयास के पीछे हूँ।

३१. सरल और शान्त हृदय तथा स्थिर मन के साथ अपना काम जारी रखो। अभीप्सा आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे आयेगी।

भारत की प्रगति हो

ऋषिवर उस दिन हम सबसे कह रहे थे—निराशा अज्ञान के कारण हुआ करती है। अगर हमें मालूम हो कि हमारे प्रयास का परिणाम ज़रूर अच्छा आयेगा तब फिर निराशा का क्या काम? मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि भारत का भविष्य निश्चित है। उसे सारे संसार का गुरु बनना है। सारे संसार का भावी ढाँचा भारत पर निर्भर है। भारत एक जीती-जागती आत्मा है और सारे संसार के लिए आध्यात्मिक ज्ञान को मूर्त रूप दे रहा है। जितनी जल्दी भारतवासी और भारत-सरकार इस बात को जान सकें उतना ही अच्छा होगा। भारत की आत्मा एक है, उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। राजनैतिक लोग भले हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बँटवारे कर लें, भले बंग-माता और कर्णाटक-माता की जय-जयकार करें, भारत-माता एक है और आज नहीं तो कल अपने बच्चों को भी एकता का पाठ पढ़ाने में सफल हो जायेगी। उसे अपने महान् कार्य का ज्ञान है, वह जानती है कि उसका पुराना वैभव फिर से आयेगा और सारे संसार का उद्धार करेगा। आज हमारे लिए सबसे बड़ा काम यही है कि हम भारत की आत्मा को जानें और उसे अपने जीवन में, व्यक्ति के और समाज के जीवन में प्रकट करें। भारत का एक बड़ा दुर्भाग्य यह है कि लोग समझते हैं कि भगवान् में और जीवन में विरोध है। पर यह बात सच्ची नहीं है। हम यह नहीं कहते कि तुम खेती-बाड़ी छोड़ दो, कल-कारख़ाने बन्द कर दो और माला लेकर बैठ जाओ। हम यह भी नहीं कहते कि सप्ताह में छह दिन जो चाहो करते रहो, सातवें दिन भगवान् को पुकार लो। हम तो यह कहते हैं कि भगवान् की पूर्णता से अपने जीवन को पूर्ण बनाओ। अपने हर काम को अच्छी-से-अच्छी तरह करने की कोशिश करो, उसे भगवान् का काम समझ कर उनके लिए करने की कोशिश करो, तब तुम्हारी मुसीबतें दूर हो जायेंगी। भगवान् पर श्रद्धा रख कर काम करना शुरू कर दो, तुम्हें कभी निराश न होना पड़ेगा। भारत को यह पाठ सारे जगत् को पढ़ाना है। भगवान् पर श्रद्धा रखो, उनकी शक्ति का आवाहन करो और अपनी ओर से कोई कसर न उठा रखो। यही भारत की प्रगति का तरीक़ा है।

ऋषिवर दम-भर के लिए रुक कर बोले, "और तुम ही हो देश के

नौनिहाल जो भारत को संसार में उसके सच्चे पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर सकते हो।"

उन्होंने हम सब पर दृष्टि फेरी जो बिजली की कौंध की तरह हम पर छा गयी।

अपने देश के लिए कुछ ठोस, सार्थक कार्य करने का बीड़ा उठाये हमारी सभा उस दिन विसर्जित हुई।

—रवीन्द्रजी

... मानचित्र में जो मिलता है, नहीं देश भारत है,
भू पर नहीं, मनों में ही, बस, कहीं शेष भारत है।
भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जाने वाला,
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लाने वाला।
भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
भारत है भावना दाह जग-जीवन का हरने की,
भारत है कल्पना मनुज को राग-मुक्त करने की।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है।
भारत वहाँ, जहाँ जीवन-साधना नहीं है भ्रम में,
धाराओं को समाधान है मिला हुआ संगम में।
जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम,
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम।...

—'हिमालय का सन्देश' कविता का अंश

कुछ भी असम्भव नहीं है

नेपोलियन कहा करता था कि असम्भव एक ऐसा शब्द है जो केवल मूर्खों के शब्दकोश में पाया जाता है। जी हाँ, मैंने इसी डर से अपने कोश के पन्ने नहीं पलटे!

बचपन में एक कहानी पढ़ी थी। किसी पक्षी ने अपना घोंसला समुद्र-तट पर बना लिया। कुछ दिनों तक तो सब कुछ ठीक रहा। एक दिन अचानक सागर क्रुद्ध हो उठा और उसकी लहरें आगे बढ़ आयीं और पक्षियों के घोंसले को अपने साथ ले गयीं।

पक्षियों को सागर की यह बात न जँची। दोनों ने झट चिल्ला-चिल्ला कर समुद्र की नाक में दम कर दिया। लेकिन वह क्या छोटे-से पक्षियों के आगे झुकने वाला था?

लेकिन पक्षी थक कर बैठना न जानते थे। दोनों ने निश्चय कर लिया कि समुद्र को उलीच कर रहेंगे। और दोनों लगे चोंच भर-भर कर पानी उलीचने। समुद्र उनकी मूर्खता पर हँस पड़ा। लेकिन उसकी यह हँसी स्वयं उसके लिए घातक निकली।

समुद्र की हँसी ने उधर से जाते हुए अगस्त्य मुनि का ध्यान खींचा और ऋषिवर यह देखने के लिए आ गये कि आख़िर बात क्या है। चिड़ियों ने अपनी रामकहानी उन्हें सुनायी। ऋषि की करुणा उमड़ आयी और उन्होंने सारा सागर चुल्लू-भर पानी की तरह पी डाला। समुद्र को अपनी हँसी भारी पड़ गयी।

लोग नाक-भौं सिकोड़ कर कह देते हैं: "क्या असम्भव गपोड़े हैं! क्या ऐसा भी कभी हो सकता है?" कहीं एक-आध विरला समझदार निकल आता है जो कहानी की गहराई में जाकर उसके सत्य को पकड़ लेता है।

चीज़ों को केवल ऊपरी तल पर ही न देखने की जिसे आदत है वह तुरत समझ लेगा कि:

है राई भी परबत अगर दिल में न हो अज़्मे दुरुस्त।
पर ठान ली दिल में तो फिर परबत भी हो तो राई है।।

हममें से हर एक किसी-न-किसी समय, किसी-न-किसी चीज़ पर असम्भव का बिल्ला लगा देता है और उसे लेकर रोता-झींकता है।

लेकिन यह अनुभव भी सभी को होगा कि कभी-कभी बिना विशेष प्रयास के एकदम असम्भव लगने वाली चीज़ सहसा सम्भव बन जाती है और असम्भव का जामा उतार फेंकती है। हमारे अन्दर "कुछ भी असम्भव नहीं है" का दीपक जल उठता है।

इस भागवत कृपा से लाभ उठाने की जगह, अपने अँधेरे पथ को उजाला करने की जगह बुद्धिमान् लोग "भाग्य" या "संयोग" की फूँकें मार कर उसे बुझा डालने की कोशिश करते हैं।

आपने देखा ही होगा कि आम का पेड़ कितना विशाल होता है, और उसका बीज? अब किसी छोटे बच्चे को बीज दिखा कर कहिये कि इसमें सारा पेड़ छिपा हुआ है। वह मानने से एकदम इनकार कर देगा और असम्भव का महामन्त्र जपने लगेगा।

हमारी अवस्था उसी बालक की-सी है। हमें भी विश्वास नहीं हो पाता कि हमारे वर्तमान के पीछे एक नया, अधिक उज्ज्वल, अधिक सुन्दर और अधिक आनन्दमय भविष्य छिपा है। हमें कोई बताता भी है तो हम उसी बच्चे की तरह असम्भव की रट लगाने लगते हैं।

लेकिन हमारी रट तथ्य को बदल नहीं सकती। लाखों अन्धे भुजाएँ उठा-उठा कर घोषणा कर दें कि सूर्य जैसी कोई चीज़ ही नहीं है तो उससे तथ्य में कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

हमारे अन्दर दृढ़ निश्चय, धैर्य और अध्यवसाय हों और साथ में हो भागवत कृपा पर श्रद्धा तो कोई चीज़ असम्भव नहीं रह जाती। जो आज असम्भव है वह कल सम्भव होकर रहेगा—हिम्मते मर्दां मददे ख़ुदा।

पु. नव. १९७७ —वन्दना

तुम्हें ऐसे पुलों पर चलना होगा जो कभी ख़त्म न होंगे, ऐसी रेलों पर चढ़ना होगा जो चलती जायेंगी, सफ़र चला ही करेगा आगे-ही-आगे को, मार्ग बढ़ा करेगा—मगर मुट्ठियाँ बाँध कर, विश्वास जमाये रखना—एक-न-एक दिन मंज़िल आयेगी ज़रूर!

—अनन्तकुमार पाषाण

तुम परिस्थिति के स्वामी बन सकते हो

माताजी ने एक सच्ची घटना सुनायी है जो उन दिनों की है जब वे फ़्रांस में थीं। उन्होंने कहा कि एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि अमुक आदमी समुद्र में डूब मरेगा। छः महीने बाद यह आदमी किसी आहारगृह में खा रहा था और मछली की हड्डी उसके गले में अटक गयी जिससे वह मर गया। ज्योतिषी ने कहा था कि इस आदमी की मौत समुद्र के साथ सम्बन्ध रखती होगी। अब मछली की हड्डी उसके गले में अटक गयी और मछली समुद्र की चीज़ है। तो भविष्यवाणी ठीक ही निकली! ज्योतिषी ने जब ये बातें कही थीं तो माताजी वहाँ उपस्थित थीं। उन्होंने ज्योतिषी से कहा, "तुमने ही इस आदमी की हत्या की। तुमने उसके मन में यह विचार बैठा दिया कि 'मेरी मृत्यु समुद्र से होगी'। यह विचार सारे समय उसके अन्दर चक्कर लगाता रहा और उसने ये परिस्थितियाँ पैदा कर दीं और मछली गले में अटक गयी और वह आदमी मर गया।"

भाग्यवान् हैं हम लोग जो उन गुरुओं के सम्पर्क में हैं जिन्होंने हमारे उन पुराने विचारों को बिलकुल बदल दिया है जिनका हमें बचपन से अभ्यास था। केवल यही नहीं, मृत्यु, पुनर्जन्म, महामारी, दुर्घटना आदि के बारे में माताजी कुछ नयी बात कहती हैं, श्रीअरविन्द कोई नयी चीज़ सिखाते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने जो कुछ कहा है उसे हम एक दिन में ही सिद्ध कर सकते हैं। मैं जो सुना रहा हूँ वे ऐसी सम्भावनाएँ हैं जिन्हें हम अपने अन्दर विकसित कर सकते हैं—अगर हमें तरीक़ा मालूम हो। इससे हम अपने जीवन को बदल सकते हैं और ज़्यादा अच्छे जीवन की ओर जा सकते हैं।

मृत्यु के बारे में बोलते हुए एक बार माताजी ने हमसे कहा कि मृत्यु से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है। मुझे इससे बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने एक और आश्चर्यजनक बात कही। उन्होंने कहा कि कभी मृत्यु एक व्यक्ति विशेष को लेने के लिए आती है, लेकिन अगर किसी व्यक्ति में, गुरु में उसकी रक्षा करने की शक्ति हो या वह व्यक्ति अभीप्सा करे, "हे प्रभो!

अभी मैंने अपने जीवन का कार्य पूरा नहीं किया है, अभी मैं और जीना चाहता हूँ" तो उसे रक्षा मिल सकती है और मृत्यु उसे छोड़ कर किसी और को ले जाये जिसकी मृत्यु बदी नहीं थी। तो जीवन इतनी सरल चीज़ नहीं है जितना कि लोग समझते हैं। जीवन के कई आयाम होते हैं और बहुत-से झमेले होते हैं। अगर तुम विधि जानते हो तो अपने जीवन को ढंग से व्यवस्थित कर सकते हो और योगाभ्यास द्वारा तुम अपनी नियति के स्वामी बन सकते हो, प्रगतिशील विकास द्वारा चेतना को बढ़ा सकते हो। वास्तव में और कोई रास्ता नहीं है।

माताजी ने हमें बतलाया था कि जब उन्होंने योगाभ्यास शुरू किया तो उनके हाथों की सभी लकीरें ग़ायब हो गयीं। उनके हाथ ख़ाली हो गये, लेकिन फिर से नयी लकीरें आ गयीं। यह जानना बहुत ज़रूरी है कि यद्यपि हमारे जीवन की घटनाएँ एक हद तक पूर्वनिश्चित होती हैं फिर भी वे बदली **जा सकती हैं**। और हमारी कई नियतियाँ होती हैं। और माताजी ने कहा है कि बहुत-सी नियतियों में हमारे लिए वह नियति लागू होती है जिसमें हमारी चेतना रहती है। अगर हम **सारे समय** उच्चतम चेतना में रहें, चलते-फिरते, बोलते-चालते, काम करते समय उच्चतम चेतना में रहें तो हमेशा सर्वोत्तम परिणाम आयेंगे। यह एक सिद्धान्त है, लेकिन एक और भी है। वर्तमान परिस्थितियों में जो अच्छे-से-अच्छा है वह हमारे साथ होगा। परन्तु अतिमानसिक रूपान्तर स्वयं परिस्थितियों में परिवर्तन ले आता है—भौतिक शरीर में परिवर्तन, सामुदायिक जीवन में परिवर्तन। इन बातों को हम किसी और अवसर पर लेंगे। आज हम इसी विषय को जारी रखेंगे कि ये वैश्व शक्तियाँ कैसे काम करती हैं, तुम उनकी पकड़ से बाहर निकल कर अपने जीवन और बाहरी परिस्थिति के स्वामी कैसे बन सकते हो। जब मैं कहता हूँ कि तुम परिस्थिति के स्वामी बन सकते हो तो तुमको यह मालूम होना चाहिये कि तुम्हारा अहंकार वह स्वामी नहीं बन सकता। तुम्हारी 'निरहंकारता' और उसके द्वारा भगवान् के साथ ऐक्य तुमको बाहरी परिस्थितियों का स्वामी बनायेंगे, क्योंकि केवल भगवान् ही पूरी तरह से मुक्त हैं और तुम अपने अन्दर उनकी एक चिनगारी रखते हो। मनुष्य को देवों की अपेक्षा ज़्यादा स्वाधीनता प्राप्त होती है क्योंकि देवों में चैत्य नहीं होता। वे अपने वैश्व स्तर से बँधे होते हैं, उससे परे जाकर

विकसित नहीं हो सकते। केवल मनुष्य ही परे जा सकता है और पृथ्वी पर अपने जीवन में भागवत शक्ति का आह्वान कर सकता है।

श्रीअरविन्द ने नेपोलियन का मज़ेदार उदाहरण दिया है। नेपोलियन हमेशा भाग्य की बात किया करता था पर साथ ही बड़े पैमाने पर योजनाएँ भी बनाया करता था। सेना, संग्रहालय आदि सबकी योजना बनाता रहता था। किसी ने उससे पूछा कि वह आख़िर ऐसा क्यों करता था कि एक ओर तो भाग्य पर विश्वास करता था, दूसरी ओर इतनी बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाता था। श्रीअरविन्द कहते हैं कि इसके उत्तर में नेपोलियन ने एक बहुत बड़े सत्य की घोषणा की थी। उसने कहा कि भाग्य ही उससे योजना बनवाता था। उसकी इच्छा-शक्ति भाग्य का यन्त्र थी जो उससे लक्ष्य की प्राप्ति करवाती थी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे बारे में हर चीज़ ब्योरे में हमारे जन्म से पहले ही नियत हो जाती है। हमें बहुत-सी स्वाधीनता दी जाती है। कुछ हद तक पूर्व-निश्चय हो जाता है और किसी घटना के निमिष-मात्र पहले ही अगर हम परिवर्तन के लिए प्रार्थना या अभीप्सा करें, अगर हमारे अन्दर की कोई चीज़ अपने-आपको भगवान् के अर्पित कर सके तो घटना बदली जा सकती है। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या यह अभीप्सा भी पूर्व-निश्चित थी? क्या यह भी पूर्व-निश्चित था कि अमुक घटना घटने वाली है परन्तु तुम अभीप्सा करोगे और वह चीज़ बदल जायेगी? हमारी साधारण चेतना के स्तर से इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है। चेतना के उच्चतर स्तर पर यह प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि हम स्वयं उत्तर जानते हैं। मैं तुम लोगों को बतलाने के लिए एक व्यावहारिक उत्तर देता हूँ।

जब तक तुम्हारे अन्दर अहंकार बना रहे तब तक एक सीमित और प्रतीयमान स्वाधीनता रहती है और उच्चतर स्तर से यह स्वाधीनता केवल काल्पनिक लगती है। जब तुम्हारे अन्दर अहंकार नहीं रहता, केवल तभी सचमुच यह स्वाधीनता होती है। लेकिन जब तक तुम्हारे अन्दर यह अहंकार बना रहता है तब तक भले यह स्वतन्त्रता सीमित या प्रतीयमान हो, तुमको यह न मान बैठना चाहिये कि सब कुछ पूर्व-निश्चित है, तुम्हें अपना अच्छे-से-अच्छा करने का प्रयास करना चाहिये।

(क्रमशः)

—नवजातजी

मुश्किलें रास्ता दिखाती हैं

मैं अकम्पित दीप प्राणों का लिये
यह तिमिर तूफ़ान मेरा क्या करेगा?
बन्द मेरी पुतलियों में रात है,
हास बन बिखरा अधर पर प्रात है,
मैं पपीहा मेघ क्या मेरे लिए,
ज़िन्दगी का नाम ही बरसात है।
साँस में मेरी उनचासों पवन
यह प्रलय-पवमान मेरा क्या करेगा?
मैं अकम्पित दीप प्राणों का लिये
यह तिमिर तूफ़ान मेरा क्या करेगा?

कुछ नहीं डर वायु जो प्रतिकूल है,
और पैरों में कसकता शूल है,
क्योंकि मेरा तो सदा अनुभव यही
राह पर हर एक काँटा फूल है,
बढ़ रहा जब मैं लिये विश्वास यह
पन्थ यह वीरान मेरा क्या करेगा?
मैं अकम्पित दीप प्राणों का लिये
यह तिमिर तूफ़ान मेरा क्या करेगा?

मुश्किलें रस्ता दिखाती हैं मुझे
आफ़तें बढ़ना बताती हैं मुझे,
राह की उत्तुंग दुर्गम घाटियाँ
ध्येय-गिरि चढ़ना सिखाती हैं मुझे,
एक भूपर, एक नभ पर पाँव है
यह पतन-उत्थान मेरा क्या करेगा?
मैं अकम्पित दीप प्राणों का लिये
यह तिमिर तूफ़ान मेरा क्या करेगा?

—नीरज

'पुरोधा' का जब अपना स्वतन्त्र कलेवर था तब हर महीने सम्पादिका द्वारा लिखी हिन्दी कहानी के साथ-साथ उसका संस्कृत रूपान्तर भी होता था। स्वतन्त्र अस्तित्व के न रहने पर संस्कृत-अनुवाद भी अनस्तित्व में विलीन हो गया।

आज भारत के कई प्रदेशों में संस्कृत का पुनर्जागरण ज़ोर पकड़ रहा है, तो निकल आया 'पुरोधा' का नवम्बर १९९३ का अंक और उस महीने की हिन्दी-संस्कृत की जोड़ी ने इस अंक में अपना स्थान आरक्षित कर लिया। वैसे प्रसंगवश यह बतलाना भी असंगत न होगा कि यहाँ, यानी, 'श्रीअरविन्द-अन्ताराष्ट्रिय-शिक्षाकेन्द्र' में आपको—यत्र तत्र सर्वत्र—संस्कृत सुनने को मिलेगी क्योंकि हमारे यहाँ बचपन से ही बच्चे संस्कृत पढ़ते-लिखते और बोलते हैं।—सं.

'गैर्वाणी'

पूर्वम् आत्मनि दृष्टिपातः कर्तव्यः

आसीत् कश्चिद् गुरुः तस्य च एकः पट्टशिष्यः। दिवारात्रि गुरोः सेवायां निरतः शिष्यः तं क्षणमपि नात्यजत् तस्य च नेत्रतारा अभूत्। गुरुः अपि तेन विना विह्वलः अभवत्।

दिनानि गतानि, मासाः व्यतीताः, वर्षाणि विगतानि, गुरुशिष्ययोः सम्बन्धे तिलमात्रोऽपि भेदः न अजायत। एकदा प्रभाते नदीतीरे सूर्यदेवाय अर्घ्यं दत्तवतः गुरोः मनसि कश्चित् विचारः उद्भूतः, कुटीरं प्राप्य शिष्यमाहूय तेन उक्तम्—"वत्स! अनन्या भक्तिः अगाधञ्च प्रेम त्वया दर्शिते मां प्रति, इच्छाम्यधुना यत् त्वमेकं वरं वृणुयाः। वृद्धावस्थां प्राप्नोम्यहं, नास्ति कोऽपि अमरः अस्मिन् जगति, वाञ्छाम्यहं यत् त्वमपि तावतां वर्षाणां साधनायाः उचितफलं प्राप्नुयाः।"

गुरोः वचनं निशम्य प्रसन्नचित्तः गद्गदहृदयः जातः शिष्यः। श्रद्धापूर्वकं गुरुं साष्टाङ्गं प्रणम्य पलमेकं ध्यात्वा बद्धाञ्जलिः अवदत् सः—"महती कृपा भवतः यत् तथा हितं चिन्तयति मे भवान्। अनुभवामि यदद्य मे तपस्या फलिता। अस्तु गुरुदेव, दीयतां मह्यं ईदृशी शक्तिः ययाहम् अन्येषां

मनः विवृतपुस्तकमिव पठितुं शक्नुयाम्। एतादृशे वरे प्राप्ते प्रयतिष्ये जनान् सचेतनान् कर्तुम्।"

"अहो! कठिनः तु वरः त्वया वृतः किन्तु यदि आग्रहः स्यात् तर्हि तथास्तु" इति अवदत् गुरुः।

प्रसन्नवदनं शिष्यं वीक्ष्य गुरुणा पुनरपि उक्तम्—"किन्तु वत्स, एतादृशं वरं प्राप्य सावधानं तिष्ठ। सर्वदा च मनसि इदं सत्यं धारय यत् जगति विराजते परमेश्वरः यः सर्वज्ञानी, सर्वव्यापकश्च।" तत्परं गुरुः शिष्यं तादृशमेकं मन्त्रं दत्तवान् यस्मिन् उच्चारितमात्रे सः अभीष्टजनस्य मनोभावान् विचारान् च तत्क्षणं ज्ञातुमशक्नोत्। वनं गत्वा सर्वप्रथमं पशुपक्षिणां हृद्भावानपठत्। तादृशं बलं प्राप्य पलमेकं तस्य मनसि कश्चित् विचारः स्फुरितः, "अहो! महाबली जातोऽहम्, एतया विद्यया जनान् निजप्रमादान् दर्शयित्वा सचेतनान् कर्तुं शक्नोमि अधुना।"

आगामि-प्रभाते ध्यानस्थं गुरुं वीक्ष्य शिष्यः अचिन्तयत्—"पश्यामि तावत् गुरुदेवस्य हृदयमपि। निष्पापं निष्कलङ्कं च स्यात् एतद् हृदयं तु।" मन्त्रम् उच्चार्य सः तत्क्षणं गुरोः अन्तस्तलं प्रविष्टः। साश्चर्यं तेन दृष्टं यत् तस्य मनसि आसीत् कुत्रचित् तिलमितः लोभः, अन्यस्मिन् कोणे लुक्कायते स्म अत्यल्पा काम-वासना, अन्यत्र च प्रच्छन्नः आसीत् ईषत् क्रोधः। एतत् सर्वं दृष्ट्वा शिष्यस्य तु मतिभ्रमः जातः—"हे भगवन्! तादृशः मनुष्यः मे गुरुः। किं किं हि चिन्तितम् आसीत् किं च वर्तते अस्मिन्।" इति अन्तर्द्वन्द्वेन सह निर्गतः सः गुरोः आश्रमात्।

कुटीरे शिष्यं न वीक्ष्य विस्मितः अजायत गुरुः यतो हि पूर्वं न कदापि एवं घटितम्। तस्य अन्वेषणाय निर्गतः गुरुः। अचिरमेव वने दृष्टः सः किन्तु दर्शनमात्रे एव गुरुः शिष्यस्य मनोभावान् अपठत्। समीपमागत्य सस्नेहमवदत् सः—"रे पुत्र! मां त्यक्त्वा आगतस्त्वम्?" शिष्येण ईषत् रुक्षवाण्या उत्तरितम्—"गुरुदेव! तावन्ति वर्षाणि अनन्यभक्त्या एतेनैव भावेन भवन्तं निरन्तरमपूजयं यत् भवान् साक्षात् प्रभुरेव, किन्तु अद्य दृष्टं यत् नास्ति आवयोः भेदः। भवतः हृदये अपि कामक्रोधमोहाः वर्तन्ते। क्षम्यतां गुरुदेव! भवन्तम् ईश्वरं मन्यमानः अज्ञानान्धकारे आसमहम्।"

शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा अतिप्रसन्नः गुरुः तं दृढमालिङ्ग्य अवदत्—"पुत्र! अद्य त्वया सत्यज्ञानं प्राप्तम्। अधुना त्वं अनन्यभावेन भगवन्तं प्रति यास्यसि।

सत्यं प्रसन्नोऽस्मि यदद्य त्वं सत्यस्य अनुसन्धानाय निर्गच्छसि। केवलम् एकः एव मे परामर्शः यदन्यस्य कस्यापि दोषदर्शनात् पूर्वम् आत्मनि अपि दृष्टिपातः कर्तव्यः। अस्तु वत्स! गच्छ, मया सह तव वासः एतावदेवासीत्, अधुना त्वं परिपक्वमतिः तेन ईश्वरेण सह मनुष्यमाध्यमेन विना अञ्जसा सम्बन्धं स्थापयितु समर्थश्च। अद्य ममापि गुरुत्वं सार्थकं कृतं त्वया।"

निश्चलः अतिष्ठत् शिष्यः परं यन्त्रवत् मन्त्रमुच्चार्य आत्मनि अपश्यत्। अहो! किं दृष्टं तेन! कामक्रोधमोहसागरे निमग्नः आसीत् स्वयम्। "अहो! पातकोऽहं, पातकोऽहम्" इति आक्रुश्य अनतिदूरगतस्य गुरोः पादौ धृतवान्।

तम् उन्नमय्य गुरुणा कथितम्—"पुत्र! सत्यं वदामि, अद्याहं बहुप्रसन्नः। एतेन विना त्वमाजीवनं मां भगवान् इति मत्वा अपूजयिष्यः मम च छत्रच्छायायाम् अवसिष्यः। किन्तु गच्छ अधुना तस्य परमप्रभोः छत्रच्छायां यस्यामहमपि वसामि।"

पहले अपने अन्दर झाँको

किसी गुरु का एक पट्टशिष्य था, क्षण-भर के लिए भी उन्हें न छोड़ता, रात-दिन गुरुदेव की सेवा में निरत रहता था शिष्य। जल्दी ही वह गुरु का नेत्रतारा बन गया। दिन गुज़रे, महीने बीते, साल व्यतीत हो गये लेकिन गुरु-शिष्य के प्रगाढ़ सम्बन्ध में रत्ती-भर भी फ़र्क न आना था न आया। एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में सूर्यदेवता को अर्घ्य देते समय अचानक गुरुदेव के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा। आश्रम जाकर शिष्य को बुला कर प्रेमपूर्वक कहा—"वत्स, मेरे प्रति तुम्हारे अटूट स्नेह और अगाध प्रीति को देख कर मैं तुम्हें मुँहमाँगा वरदान देना चाहता हूँ। मैं भी वृद्ध हो रहा हूँ, और इस संसार में कोई अमर तो है नहीं, चाहता हूँ कि इतने वर्षों की कठिन तपस्या का तुम्हें भी समुचित फल मिले।"

गुरु के वचन सुन कर शिष्य का हृदय गद्गद हो उठा। श्रद्धापूर्वक गुरु को साष्टांग प्रणाम कर बोला—"बड़ी कृपा है आपकी गुरुदेव। आज सचमुच मेरी तपस्या फलीभूत हुई। गुरुदेव, तब मुझे वरदान के रूप में यह शक्ति दीजिये कि मैं दूसरों के मन को खुली किताब की तरह पढ़ सकूँ। इस तरह मैं लोगों को सचेतन कर सकने में समर्थ हो सकूँगा।"

गुरु बोले—"तुमने काफ़ी कठिन वर माँगा है वत्स, लेकिन अगर तुम्हारा आग्रह हो तो तथास्तु।" शिष्य का चेहरा दमक उठा, उसके चेहरे की चमक देख गुरु फिर बोले—"बेटा, ऐसा वरदान प्राप्त कर हमेशा सावधान रहना और इस सत्य को कभी न भूलना कि संसार में सर्वत्र सर्वव्यापी और सर्वज्ञ परम प्रभु विराजमान हैं।" उसके बाद गुरु ने शिष्य को ऐसा मन्त्र दिया जिसके उच्चारण-मात्र से वह जिस किसी व्यक्ति के अन्दर प्रवेश कर उसके मनोभावों को आसानी से जान सकता था। सबसे पहले वन में जाकर उसने पशु-पक्षियों के हृदय को पढ़ा और प्रसन्नता से झूम उठा। हवा के झोंके की तरह यह विचार उसके मस्तिष्क से गुज़रा—"वाह! अब तो मैं महाबली बन गया, इस शक्ति के बल-बूते पर लोगों को उनके मन के दोष दर्शा कर सचेतन बनाने की कोशिश कर सकता हूँ।"

अगले सवेरे गुरुदेव को ध्यान में बैठा देख शिष्य ने सोचा, "अपने गुरुदेव के हृदय में भी ज़रा झाँक देखूँ, यह तो निष्कलंक, पवित्र, निष्पाप हृदय होगा।" मन्त्र का उच्चारण कर क्षण-भर में शिष्य ने गुरुदेव के हृदय में प्रवेश पा लिया। और क्या देखा उसने? एक कोने में था तिल-भर लोभ, दूसरे कोने में छिपी पड़ी थी थोड़ी-सी काम-वासना, कहीं और से झलक रही थीं क्रोध की कुछ चिनगारियाँ। यह सब देख कर शिष्य दिग्भ्रान्त हो उठा—"क्या मेरे गुरु ऐसे व्यक्ति हैं। हे भगवान्! क्या-क्या सोचा था इनके बारे में और क्या निकला इनके अन्दर।" इसी अन्तर्द्वन्द्व को लिये वह गुरु के आश्रम से निकल गया।

ध्यान टूटने के बाद शिष्य को आसपास न देख कर गुरु भी अचरज में पड़ गये क्योंकि पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था। वे उसकी खोज में निकल पड़े। कुछ देर बाद वन में उसे ढूँढ़ निकाला, लेकिन उसका चेहरा देख कर उसके मनोभाव पढ़ने में उन्हें देर न लगी। अपने पट्टशिष्य के समीप आकर सस्नेह बोले—"बेटा, मुझे छोड़ कर चला आया तू?" शिष्य ज़रा रूखे स्वर में बोला—"गुरुदेव, इतने वर्षों तक मैं अनन्या भक्ति से निरन्तर आपको इसी भाव से पूजता रहा कि आप साक्षात् प्रभु हैं, लेकिन आज देख लिया कि हम दोनों में भेद नहीं है। आपके हृदय में भी काम-क्रोध-मोह की लुका-छिपी चलती रहती है। क्षमा कीजिये गुरुदेव! लेकिन आपको साक्षात् प्रभु मान कर मैं अज्ञान के अन्धकार में पड़ा था।"

शिष्य की बातें सुन कर गुरु बहुत प्रसन्न हो उठे, उसे आलिंगन में बाँध कर बोले—"पुत्र, आज तुमने सच्चा ज्ञान पा लिया, सचमुच बहुत प्रसन्न हूँ आज मैं। अब तुम अनन्य भाव से भगवान् की ओर जा सकते हो। केवल मेरी एक सलाह है, दूसरों के दोष देखने से पहले मनुष्य को ज़रा अपने अन्दर भी झाँक कर देख लेना चाहिये। जाओ पुत्र, अब जाओ, मेरा और तुम्हारा इतने वर्षों का ही साथ था, अब तुम इतने परिपक्व हो गये हो कि मनुष्य के माध्यम के बिना सीधे ही भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड़ सको। आज मैं सचमुच बहुत प्रसन्न हूँ, आज तुमने मेरे गुरुत्व को भी सार्थक कर दिया।" इतना कह कर गुरु वहाँ से चल दिये।

गुरुदेव के वचन सुन कर शिष्य कुछ देर तक वहीं मूर्ति की तरह निश्चल खड़ा रहा फिर यन्त्रवत् मन्त्र का उच्चारण कर उसने अपने अन्दर दृष्टिपात् किया। ओह! कितनी कीचड़ फैली थी वहाँ, काम-क्रोध-मोह के दलदल में फँसा हुआ था वह! अपना यह हाल देख कर रो उठा शिष्य "कितना पापी हूँ मैं, कितना पापी हूँ मैं!" चिल्लाता हुआ वह कुछ ही दूरी पर गये गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा। उसे उठा कर अपने हदय से लगा कर गुरुदेव बोले—"यह क्या पुत्र, आज मैं सचमुच बहुत प्रसन्न हूँ। इस अनुभव के बिना तुम आजीवन मुझे ही भगवान् मान कर पूजते और मेरी ही छत्रच्छाया में बसते, लेकिन आज से तुम उस परमेश्वर की छत्रच्छाया में निवास करने जा रहे हो जिनके वितान-तले यह सारा संसार बसता है।"

—वन्दना

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपथिकं स्पृहा हि नः।।

(देवता भी भारतवासियों की महिमा गाते हुए कहते हैं) अहा! इन लोगों ने ऐसा क्या पुण्य किया है कि इन्होंने भारत में भगवान् की सेवा करने के लिए मनुष्य-जन्म पाया है। या स्वयं भगवान् ही इन पर प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्य के लिए तो हम भी तरसते हैं। —श्रीमद्भागवत

संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा होना चाहिये।

श्रीमाँ

अगस्त २०२३ के हमारे अंक में 'भगवान् से मिलने का कार्यक्रम कभी बनाया' कहानी के अन्तर्गत कई ऐसी अक्षम्य भूलें छूट गयी हैं कि दुःख के साथ-साथ बेहद ग्लानि भी हो रही है। हमारी सुधी पाठिका श्रीमती गीता टण्डन जी ने ग़लतियों की ओर संकेत किया। धन्यवाद गीता जी, लेकिन आश्चर्य अब भी बना हुआ है कि ऐसा हुआ कैसे??

क्या करें? अब क्षमायाचना के अलावा हमारे पास कोई और चारा भी तो नहीं है। हमें आशा है, विश्वास है कि आगे से हमारी पत्रिका और हमें ऐसी शर्मिन्दगी कभी नहीं सहनी पड़ेगी! —सम्पादिका

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

यह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है कि किसी भी श्रद्धा या श्रद्धा के सहारे को तब तक न हटाया जाये जब तक कि उसके स्थान पर किसी अधिक महान् तथा अधिक पूर्ण वस्तु को न ले आया जाये।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA INTERNATIONAL SCHOOL,

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION

An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

SRI AUROBINDO INTERNATIONAL SCHOOL

(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st October 2023
Rs. 30 (Monthly)
अग्निशिखा एवम् पुरोधा, अक्तूबर २०२३, वर्ष १, अंक ३, पूर्णांक ३
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

SRI AUROBINDO
A New Dawn
A HAND-PAINTED ANIMATION FILM BY SRI AUROBINDO SOCIETY

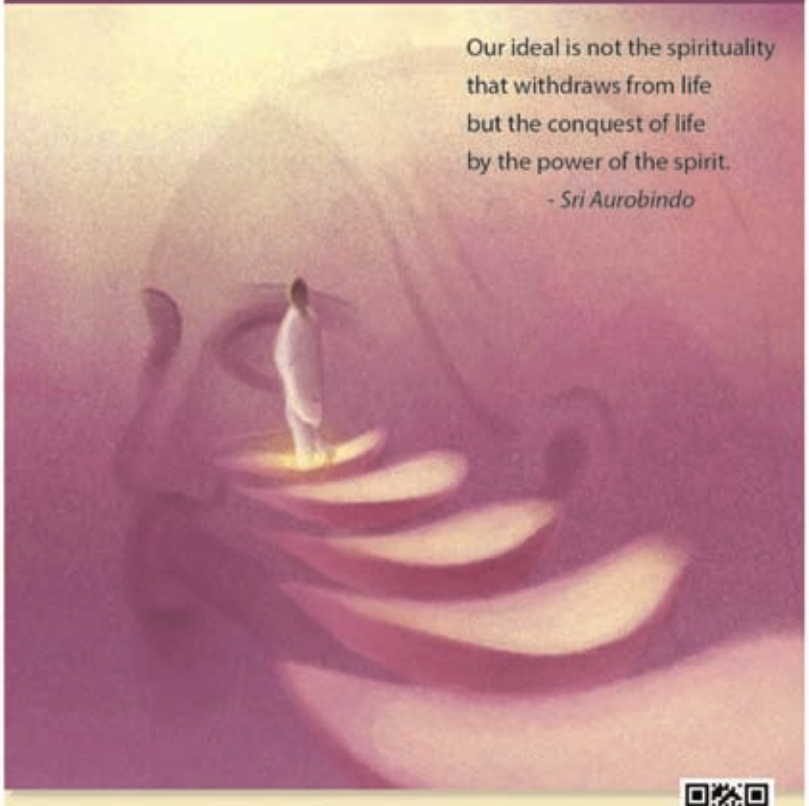

Watch the film at www.anewdawn.in